भगवान बुद्ध के अग्रश्रावक
सारिपुत्त
(महाप्रज्ञावानों में अग्र)
विपश्यना विशोधन विन्यास
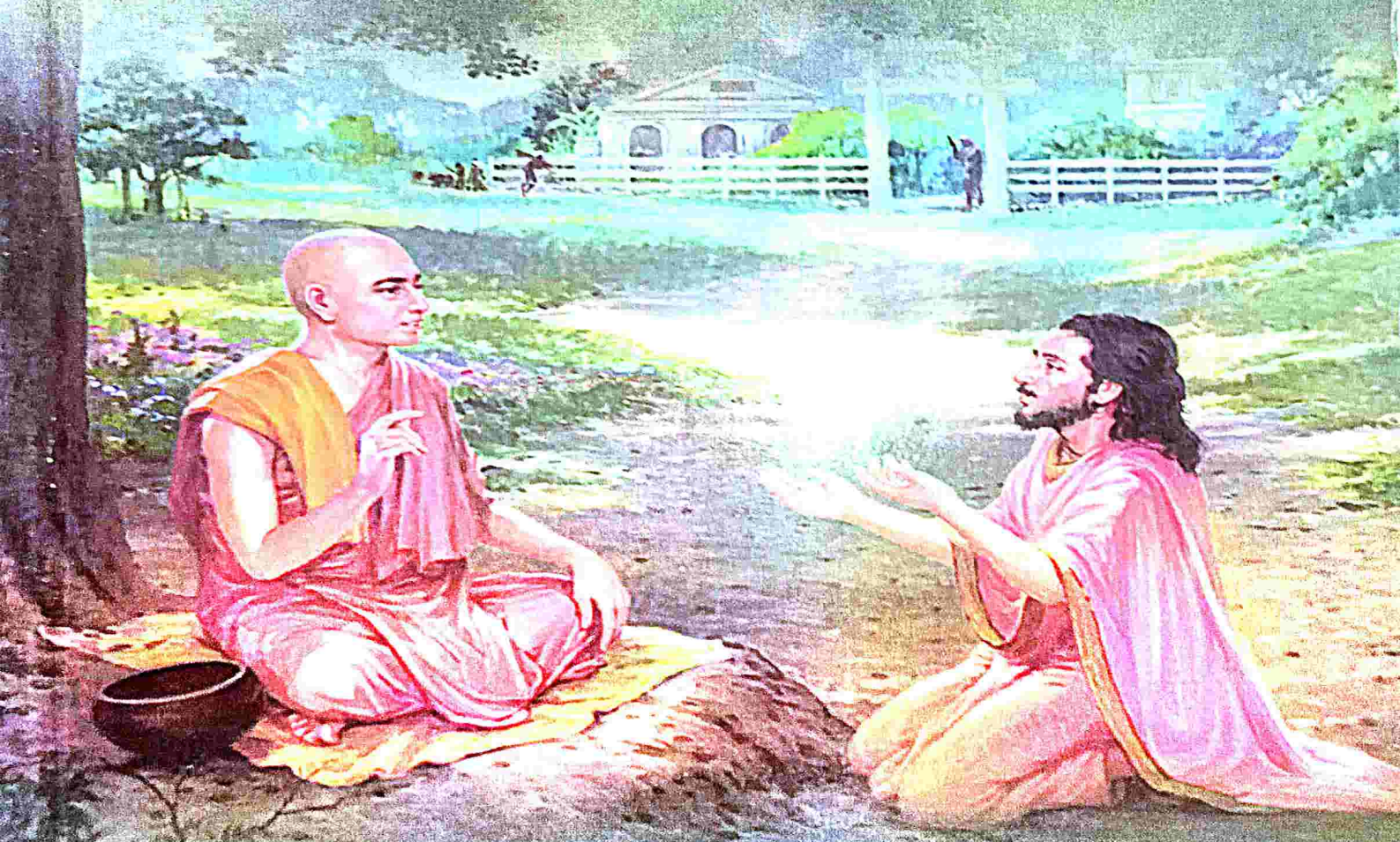
भगवान बुद्ध की उद्घोषणा

****

"एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं महापञ्ञानं यदिदं सारिपुत्तो।"

****

"भिक्षुओ! मेरे महाप्रज्ञावान भिक्षु-श्रावकों में अग्र (श्रेष्ठतम) है सारिपुत्त।"

****

– अङ्गुत्तरनिकाय (१.१.१८९)

आयुष्मान सारिपुत्त

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय

थेरगाथा की अट्ठकथा में भगवान बुद्ध के अस्सी 'महाश्रावकों' के नाम गिनाये गये हैं। उनमें भगवान बुद्ध के प्रज्ञावानों में अग्र महाश्रावकों में आयुष्मान सारिपुत्त का नाम सर्वोपरि है। इस पुस्तिका में इन महाश्रावक का जीवनवृत्तांत प्रस्तुत किया जा रहा है।

महाजनपद मगध की राजधानी राजगह के पास नाळकगाम में वङ्गन्त और रूपसारी नामक ब्राह्मण दंपति के घर उपतिस्स (सारिपुत्त) का जन्म हुआ। यह दंपति महाधनवान तथा संपत्तिशाली थे। वङ्गन्त ग्राम के मुखिया थे। उनके सात संतान हुईं – चार पुत्र (उपतिस्स, उपसेन, महाचुन्द और रेवत) और तीन पुत्रियां (चाला, उपचाला और सिसूपचाला)। परंपरा के अनुसार सबसे ज्येष्ठ पुत्र का नाम ग्राम के नाम पर उपतिस्स पड़ा। कालांतर में उपतिस्स सारिपुत्त के नाम से प्रसिद्ध हुए। अपार भौतिक संपत्ति का वारिस होने पर भी सबसे बड़े बेटे उपतिस्स की रुचि धर्म-संपत्ति की ओर बढ़ती चली गयी।

वह अपने बचपन के मित्र कोलित (मोग्गल्लान) के साथ अपनी अपार वैभव-संपदा को त्याग सत्य की खोज में निकल पड़े। उपतिस्स और कोलित के परिवारों का पिछली सात पीढ़ियों से संबंध चला आ रहा था, इसलिए बाल्यकाल से ही इन दोनों का अति घनिष्ठ संबंध रहा। दोनों ही परिवार खूब धनाढ्य थे।

जन्म और मृत्यु के दुःखों का भव-संसरण चलता ही रहता है। इससे मुक्ति प्राप्त कैसे की जाय? उन्हें इसी की खोज थी। दोनों ने प्रव्रज्या ली। सर्वप्रथम उन्होंने परिव्राजक आचार्य संजय का शिष्यत्व ग्रहण किया परंतु वे इससे संतुष्ट नहीं हुए। तदनंतर जंबुद्वीप के अन्य विद्वानों से भी संपर्क किया परंतु संतोष प्राप्त नहीं हुआ।

इसके उपरांत वे एक दूसरे से अलग होकर आचार्यों की तलाश करने लगे और आपस में यह निर्णय किया कि जो कोई कुशल-आचार्य प्राप्त करने में पहले सफल हो वह इसकी जानकारी दूसरे को तुरंत देवे।

एक दिन राजगह की गलियों में घूमते समय उपतिस्स की भेंट भिक्षु अस्सजि से हुई। उपतिस्स आयुष्मान अस्सजि के चेहरे की कांति और शांति तथा संयमित चाल-ढाल से अत्यंत प्रभावित हुए। उपतिस्स को लगा कि अवश्य ही इस व्यक्ति

ने अमृत अवस्था प्राप्त कर ली है। उपतिस्स ने उनसे पूछा – "आपके शास्ता कौन हैं? उनकी क्या शिक्षा है, उनका वाद क्या है?"

उपतिस्स द्वारा अत्यधिक आग्रह किये जाने पर आयुष्मान अस्सजि ने भगवान की शिक्षा के बारे में बताते हुए कहा –

"जो कुछ कारणों से उत्पन्न होता है, उसका कारण तथागत बताते हैं और उसका जो निरोध है, उसे भी। महाश्रमण का यही वाद है, यही कथन है, यही शिक्षा है।"

पूर्वजन्मों की संचित पुण्य-पारमिताओं के फलस्वरूप उपतिस्स को थोड़े में ही सारी बात समझ में आ गयी। भगवान भव-संसरण के दुःखों की उत्पत्ति और उनका निरोध सिखाते हैं। यही उन्हें अभीष्ट था। उनके विरज-विमल धर्म-चक्षु खुल गये। उन्होंने सोतापत्ति अवस्था का साक्षात्कार कर लिया।

उपतिस्स ने सारी बात अपने बालसखा कोलित को बतलायी। उपतिस्स की वाणी सुनते-सुनते उनके भी धर्मचक्षु खुल गये। कोलित ने भी अमृत का पान किया और सोतापत्ति अवस्था का साक्षात्कार किया।

उपतिस्स और कोलित भगवान की शरण में जा पहुँचे। उन्हें देखते ही भगवान बुद्ध ने घोषणा की कि ये दोनों (सारिपुत्त और मोग्गल्लान) मेरे अग्रश्रावक होंगे।

समय पाकर दोनों ने अर्हत्व अवस्था का साक्षात्कार किया। भगवान बुद्ध ने अपने भिक्षु-श्रावकों में महाप्रज्ञावानों में आयुष्मान सारिपुत्त को अग्र घोषित किया जब कि आयुष्मान मोग्गल्लान को ऋद्धिमानों में अग्र।

धर्मसेनापति सारिपुत्त की प्रशंसा करते हुए भगवान ने कहा – "भिक्षुओ! सारिपुत्त है अर्थज्ञ, धर्मज्ञ, मात्रज्ञ, कालज्ञ और परिषद का जानकार। इन पांच बातों से युक्त सारिपुत्त तथागत द्वारा प्रवर्तित अनुपम धर्मचक्र को यथोचित रीति से अनुप्रवर्तित करता है, घुमाता है, आगे बढ़ाता है। उस धर्मचक्र को लोक में कोई भी व्यक्ति अप्रवर्तित नहीं कर सकता, उसे पीछे नहीं घुमा सकता।"

ये दोनों अग्रश्रावक भगवान की शिक्षा के प्रचार-प्रसार में भगवान का हाथ बँटाते। संघ के संचालन में भगवान की मदद करते। आयुष्मान सारिपुत्त चारों परिषदों (भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका) की धर्म-संबंधी शंकाओं का समाधान करते। वे लोगों को भगवान बुद्ध सदृश ही उपदेश देते। सारिपुत्त चार आर्य-सत्यों को खूब अच्छी तरह समझा पाते थे जबकि मोग्गल्लान ऋद्धि-बल से साधकों को खूब अच्छी तरह प्रशिक्षित कर पाते थे। आयुष्मान सारिपुत्त के प्रज्ञापूर्ण वृत्तांतों का उल्लेख तिपिटक में अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है।

आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान अनुरुद्ध की साधना में विघ्न देखा तो उन्होंने उन्हें सचेत करते हुए कहा – "आयुष्मान अनुरुद्ध! आपके भीतर जो अहंकार है, उद्धतपन है, पश्चात्ताप है, इन तीनों धर्मों को छोड़कर चित्त को निर्वाण की ओर केंद्रित करें।" ऐसा करने पर आयुष्मान अनुरुद्ध शीघ्र ही निर्वाणलाभी हुए।

आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान आनन्द को बतलाया कि जब कोई आर्यश्रावक बुद्ध, धर्म, संघ के गुणों के प्रति अचल श्रद्धा से युक्त होता है तथा अछिद्र, निर्मल, विज्ञों द्वारा प्रशंसाप्राप्त शील वाला होता है तब इन चार धर्मों से युक्त आर्यश्रावक सोतापन्न हो जाता है। फिर वह धर्ममार्ग से च्युत नहीं हो सकता, उसका संबोधि प्राप्त कर लेना सुनिश्चित हो जाता है।

एक अन्य अवसर पर आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान महाकोट्ठिक को छः स्पर्शायतनों का निरोध और उनके प्रपंच के बारे में जानकारी देते हुए कहा – "आयुष्मान जहां तक छः स्पर्शायतनों की सीमा है, वहीं तक प्रपंच की सीमा है। जहां तक प्रपंच की सीमा है, वहीं तक स्पर्शायतनों की भी सीमा है। छः स्पर्शायतनों के निःशेष निरोध हो जाने से प्रपंचों का निरोध हो जाता है। तब, प्रपंचों का निरोध हो जाने से स्पर्शायतनों का शमन हो जाता है।"

एक अवसर पर आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान महाकस्सप को अनातापी (जो अपने क्लेशों को नहीं तपाता), अनोत्तापी (जो क्लेशों के उठने पर सावधान नहीं रहता) तथा आतापी (अपने क्लेशों को तपाते रहने वाला) और ओत्तापी (क्लेशों के उत्पन्न होने पर सजग रहने वाला) के बारे में जानकारी दी। यह भी बतलाया कि केवल आतापी और ओत्तापी ही परमपद निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है।

आयुष्मान आनन्द की आयुष्मान सारिपुत्त के प्रति बड़ी आत्मीयता थी। सावत्थी में भगवान ने आयुष्मान आनन्द से पूछा – "आनन्द! तुझे सारिपुत्त सुहाता है न?" इस पर आयुष्मान आनन्द भगवान से बोले – "भंते! मूर्ख, दुष्ट, मूढ़ और सनकी व्यक्ति को छोड़कर ऐसा कौन होगा जिसे महास्थविर सारिपुत्त न सुहायें!"

आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान आनन्द की प्रशंसा करते हुआ कहा – "आयुष्मान आनन्द हैं अर्थकुशल, धर्मकुशल, व्यंजनकुशल, निरुक्तिकुशल, पूर्वापरकुशल।"

भगवान ने श्रावकों की परिषद में धर्मोपदेश देते हुए यह प्रज्ञप्त किया – "यदि तुम घर से बेघर हो जाओ तो वैसा ही बनना जैसे हैं सारिपुत्त और मोग्गल्लान। मेरे भिक्षु श्रावकों में यही दो आदर्श माने जाते हैं।"

भगवान बुद्ध ने सारिपुत्त और मोग्गल्लान को अपने आदर्श शिष्य होने की घोषणा की। भगवान अपने इन दोनों अग्रश्रावकों के दर्शन के लिए भिक्षुओं को सदैव प्रेरित किया करते – "भिक्षुओ! सारिपुत्त और मोग्गल्लान की संगति करो। वे ज्ञानी हैं, पंडित हैं। सब्रह्मचारियों पर अनुग्रह करने वाले हैं। सारिपुत्त जन्म देने वाली जननी के समान हैं, मोग्गल्लान पोषण करने वाली धात्री के समान। सारिपुत्त सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित करते हैं, मोग्गल्लान निर्वाण में।"

देवदत्त द्वारा भिक्षु-संघ को फोड़कर पांच सौ नये प्रव्रजित भिक्षुओं को अपने साथ गयासीस के पास ले जाने पर भगवान के निर्देश पर सारिपुत्त और मोग्गल्लान ने उन्हें अपने धर्मोपदेश द्वारा वहां से वापिस संघ में लाने के कार्य में सफलता प्राप्त की। यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना थी जिसका श्रेय इन्हीं दो अग्रश्रावकों को जाता है।

आयुष्मान सारिपुत्त से अनेकों ने प्रव्रज्या पायी। धर्मसेनापति सभी का बहुत ख्याल रखते। वे उनकी भौतिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते। जब कभी भिक्षु बीमार पड़ते तब आयुष्मान सारिपुत्त उनकी सेवा-सुश्रूषा करते। इन सभी को ध्यान का आलंबन बतलाते। उन्हें सोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित करते।

धर्मसेनापति सारिपुत्त की सहनशीलता अद्भुत थी। किसी भी स्थिति में क्रुद्ध न होने की उनकी क्षमता भी अद्भुत थी। एक बार किसी अदृश्य प्राणी ने उनके सिर पर इतना तीव्र प्रहार किया जिससे कि सामान्य व्यक्ति होता तो निष्प्राण ही हो जाता, अथवा उसका मस्तिष्क निष्क्रिय हो जाता। परंतु आयुष्मान सारिपुत्त रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए। एक अन्य अवसर पर मां द्वारा आयुष्मान सारिपुत्त को बुरा-भला कहे जाने पर भी वे शांत रहे।

भगवान द्वारा विनय के नियमों की नींव रखने के लिए भगवान से विनती करने का मुख्य श्रेय आयुष्मान सारिपुत्त को जाता है। सारिपुत्त के प्रसंग में भगवान बुद्ध ने विनय के कई नियम प्रज्ञप्त किये जैसे – लहसुन का सेवन, अतिरिक्त चीवर रखने का विधान, दान-अनुमोदन का नियम, अग्रपिंड के लिए योग्य भिक्षु, धर्मवादी तथा अधर्मवादी की पहचान, इत्यादि।

महास्थविर सारिपुत्त की कल्याणी शिक्षा से अस्सी हजार गृहस्थ दुःख-मुक्ति का मार्ग अपना कर स्वर्ग में पैदा हुए। उनके स्वयं के तीन भाई एवं तीन बहनें निर्वाणलाभी हुए। इसके बावजूद वे अब तक अपनी माता को बुद्ध के बताये धर्म की ओर आकर्षित नहीं कर सके। मां को अपनी परंपरागत मान्यताओं से और कर्मकांडों से गहरा चिपकाव है। धर्मसेनापति सारिपुत्त खूब समझते हैं कि मां का उपकार अनंत होता है। किसी भी पुत्र के लिए अपनी मां की सबसे महान सेवा यही है कि वह उसे मुक्ति के मार्ग पर लगा दे।

आयुष्मान सारिपुत्त के परिनिर्वाण का समय समीप आया। इस कार्य हेतु उन्होंने अपने पैतृक गांव को चुना। भगवान से विदाई लेकर अपने पांच सौ भिक्षु साथियों के साथ वे अपने घर पहुँचे। मां मिलने आयी तब उसने देखा कि वहां बहुत से प्रकाशमान अदृश्य प्राणी विद्यमान थे। मां के पूछने पर आयुष्मान सारिपुत्त ने उनको अवगत कराया – "ये चारों दिशाओं के द्वारपाल महाराजा थे, देवराज शक्र थे, ब्रह्मलोक के ब्रह्मा थे। वे सब अर्हंत के अंतिम दर्शन करने आये थे।"

मां यह सुनकर हर्षविभोर हुई। मेरा पुत्र इतना ऋद्धिशाली और समृद्धिशाली है तो उसका आचार्य तो इससे भी महान होगा। इस पर आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान के गुण गाये, जिसे सुनते-सुनते माता का शरीर पुलक-रोमांच से भर गया। वह सोतापन्न हुई। धन्य हुई माता! धन्य हुआ पुत्र!

सूर्योदय के पूर्व प्रत्यूषकाल के समय धर्मसेनापति ने अपने पांच सौ भिक्षुओं को बुलाकर कक्ष के सामने खुले प्रांगण में बैठाया और उनसे कहा – "आप सब पैंतालीस वर्षों से मेरे साथ हो। इतने समय में मैंने शरीर या वाणी से ऐसा कोई कर्म किया हो जो आपको दुःखद लगा हो, तो मुझे क्षमा करना!"

शिष्यों ने कहा, "भंते! आप महान हैं! इन पैंतालीस वर्षों में हममें से किसी ने भी आपके प्रति कोई पीड़ाप्रद कर्म किया हो तो आप हमें क्षमा करें!" धर्मसेनापति ने संघ से कहा – "तुम सब पवित्र हो, निर्दोष हो!" इतना कहकर धर्मसेनापति ने अंतिम सांस छोड़ी और परिनिवृत्त हुए।

धन्य महान धर्मसेनापति! धन्य उनका पावन भिक्षुसंघ!

इसी प्रकार अन्य महाश्रावकों तथा महाश्राविकाओं के जीवनवृत्तांत भी प्रकाशित करने की योजना है जिससे विपश्यी साधक एवं साधिकाएं उनसे प्रेरणा पाकर अपने जीवन का यत्किंचित परिष्कार कर सकें।

विपश्यना विशोधन विन्यास

अमृत की खोज

जन्म तथा नामकरण

राजगह (राजगृह, राजगीर, राजगिरि) के निकट उपतिस्स और कोलित नामक दो गांवों में भगवान गोतम बुद्ध के जन्म के पूर्व उनके दोनों अग्रश्रावक एक ही दिन और एक ही समय जन्मे। दोनों पड़ोसी गांव थे। अपनी-अपनी मां के गर्भ में भी ये दोनों श्रावक एक ही दिन आये। उक्त दोनों गांव ब्राह्मणों के थे। इनके माता-पिता काफी समृद्ध थे, करोड़ों के स्वामी थे। जीवन सुखमय था। उपतिस्स ग्राम में जन्मने के कारण एक का नाम उपतिस्स पड़ा, माता रूपसारी से उत्पन्न होने के कारण ये सारिपुत्त (सारिपुत्र) कहलाये। दूसरे का नाम कोलित रखा गया, जो कोलित नाम के गांव में पैदा हुए। कालक्रम में कोलित महामोग्गल्लान नाम से प्रसिद्ध हुए।

धर्मचक्षु खुले

दोनों बालक उपतिस्स और कोलित वयस्क होते-होते सब प्रकार की कलाओं में पारंगत हुए। पड़ोस के गांव, एक ही दिन का जन्म, ब्राह्मण परिवार, धनाढ्य कुल आदि अनेक बातों में समानता होने के कारण उनमें सहज ही मित्रता का भाव निपजा। पहले से ही दोनों परिवारों के पारस्परिक संबंध सात पीढ़ियों से अच्छे थे। ये दोनों बचपन में साथ-साथ रहते, खेलते-कूदते, विद्याध्ययन करते और साथ-साथ शिल्प भी सीखते। कुमार उपतिस्स के खेलने के लिए नदी या उद्यान जाते समय उसके साथ पांच सौ सोने की शिविकाएं (पालकियां) रहतीं और कुमार कोलित के साथ पांच सौ अश्वरथ। दोनों बालकों के साथ पांच सौ, पांच सौ तरुण सहायक रहते थे। राजगह में हर साल पहाड़ का उत्सव आयोजित किया जाता था। दोनों एक ही मंच पर बैठते थे। एक साथ बैठकर उत्सव को देखते हुए हँसने के संदर्भ में हँसते थे, संविग्न स्थिति में संविग्न होते थे, दान देने के लिए युक्त परिस्थिति में दान देते थे। इस प्रकार त्यौहार देखते-देखते एक दिन, ज्ञान के परिपाक के कारण, पहले दिनों की

भांति, हँसने की परिस्थिति में हँसना अथवा संविग्न स्थिति में संविग्न होना अथवा देने के संदर्भ में देना नहीं हुआ। दोनों ही इस तरह चिंतामग्न होकर बैठे थे – "यहां देखने के लिए क्या है? एक सौ साल पहुँचने के पहले ही इनका नामोनिशान नहीं रहेगा। हमें मुक्ति का उपाय ढूंढना चाहिए"।

कोलित ने उपतिस्स से कहा – "मित्र, उपतिस्स, तुम तो दूसरे दिनों की भांति खुश नहीं हो, असंतुष्ट हो। क्या सोच रहे हो?"

"मित्र कोलित, इन्हें देखने में सार नहीं, यह निरर्थक है, अपनी मुक्ति का उपाय खोजना चाहिए – यही सोचते बैठा हूं। तुम क्यों असंतुष्ट हो?" उसने भी उसी तरह कहा। दोनों का एक ही इरादा जानकर उपतिस्स ने कहा – "हम दोनों का इरादा भला है। मोक्षमार्ग को खोजने हेतु हमें प्रव्रज्या ग्रहण करनी चाहिए। किसके पास प्रव्रजित होंगे?"

उस समय संजय नामक परिव्राजक राजगह में बड़े परिव्राजक समुदाय के साथ रहता था। उपतिस्स और कोलित ने प्रव्रज्या हेतु अपने माता-पिता से अनुमति प्राप्त की। तदनंतर एक शिविका से और दूसरा रथ से गणाचार्य बेलट्ठपुत्र संजय के पास गये, उनसे प्रव्रज्या ग्रहण की और अपने साथ आये पांच सौ तरुण सहायकों को शिविकाओं और रथों को लेकर वापस चले जाने की आज्ञा देकर संजय के आश्रम में रहने लगे।

गणाचार्य संजय बहुत ही अस्थिर मत वाला आचार्य था। वह कर्म और कर्मफल को, लोक और परलोक को न स्वीकारता था और न ही नकारता था। उसकी कोई निश्चित मान्यता नहीं थी। न तो वह नास्तिकता का समर्थन करता था, न आस्तिकता का। आश्चर्य होता है कि कोई स्थिर मत न होने पर भी उसके अनेक भक्त-अनुयायी थे। यद्यपि गणाचार्य संजय के आश्रम में ढाई सौ शिष्य थे, फिर भी सत्य की खोज के प्रति जैसी लगन उपतिस्स और कोलित के भीतर थी वैसी और किसी के भी मन में नहीं थी। आचार्य संजय के सिद्धांत से वे संतुष्ट नहीं थे। लिहाजा वे अन्य साधु-संतों और ब्राह्मणों से भी मिलने-जुलने लगे।

उन्होंने आपस में यह प्रतिज्ञा की कि दोनों में जो भी पहले अमृत (सत्य) का आस्वादन करेगा वह दूसरे को अवश्य ही चखायगा (बतायगा)।

इस तरह उपतिस्स और कोलित मुक्तिमार्ग की खोज में अलग-अलग विचरण करने लगे। उस समय शास्ता राजगह के वेळुवन में विहार करते थे। तब "भिक्षुओ, चलो बहुजनों के हित के लिए चारिका करो" के अनुसार त्रिरत्न के गुणों के प्रकाशन के लिए भेजे गये इकसठ अर्हंतों में से पंचवर्गीय भिक्षुओं में अस्सजि (अश्वजित) लौटकर राजगह आये और दूसरे दिन सुबह ही भिक्षापात्र और चीवर लेकर भिक्षाटन के लिए राजगह में प्रवेश किया।

उस दिन परिव्राजक उपतिस्स (सारिपुत्त) ने राजगह की राजनगरी में आयुष्मान अस्सजि को भिक्षाटन करते देखा। वह उनकी संयत चाल-ढाल, नीची नजर और सु-आच्छादित चीवर, शांति और कांतियुक्त चेहरे को देख कर अत्यंत प्रभावित हो उनकी ओर आकर्षित हुआ। उसे लगा कि ये या तो अरहंत हैं या अरहंत-मार्ग पर आरूढ़ हैं। अधिक परिचय प्राप्त करने की तीव्र उत्कंठा लिए हुए सारिपुत्त उनके पीछे हो लिया। भिक्षाचारिका पूरी हुई। भिक्षु अस्सजि जहां एकांत में आहार लेने के लिए बैठे, वहां उनके सामने आ, नमस्कार कर उनसे पूछा कि आपके चेहरे की इंद्रियां अत्यंत शुद्ध और शांत हैं। आपके आचार्य कौन हैं? आप किसके सिखाये धर्म का आचरण कर रहे हैं?

अस्सजि ने बताया कि वे शाक्यकुल से प्रव्रजित हुए भगवान गोतम बुद्ध के शिष्य हैं और उन्हीं के बताये धर्म का पालन करते हैं।

जब सारिपुत्त ने उनसे भगवान के मत के बारे में पूछा तब अस्सजि ने कहा – "आवुस! मैं इस धर्म में अभी नया-नया प्रव्रजित हुआ हूं, विस्तार से मैं आपको नहीं बतला सकता, इसलिए संक्षेप में कहता हूं।"

तब सारिपुत्त परिव्राजक ने आयुष्मान अस्सजि से कहा – "अच्छा आवुस! थोड़ा बहुत जो हो कहो, सार को ही मुझे बतलाओ। सार से ही मुझे प्रयोजन है।"

तब आयुष्मान अस्सजि ने सारिपुत्त को संक्षेप में यों बताया –

ये धम्मा हेतुप्पभवा, तेसं हेतुं तथागतो आह।
तेसञ्च यो निरोधो, एवंवादी महासमणो॥

– विनयपिटक, महावग्ग ६०, सारिपुत्तमोग्गल्लानपब्बज्जाकथा

[जो कुछ कारणों से उत्पन्न होता है, उसका कारण तथागत बताते हैं और उसका जो निरोध है, उसे भी। महाश्रमण का यही वाद है, यही कथन है, यही शिक्षा है।]

भगवान बुद्ध का कोई दार्शनिक वाद या मत तो था नहीं। वे तो व्यावहारिक शास्ता थे। परिव्राजक सारिपुत्त विपुल पुण्य-पारमी का धनी था। उसे तुरंत समझ में आ गया कि संसार में जो भी दुःख है, वह बिना कारण उत्पन्न नहीं होता। भगवान उसकी उत्पत्ति का मूल कारण बताते हैं और यही नहीं, उसके निरोध की, यानी नितांत उन्मूलन की, साधना बताते हैं। इसी की तो भूख थी, इसी की तो खोज थी उसे। वाद-विवाद बढ़ाने वाली मत-मतांतरीय मान्यताएं किस काम की? अर्थपूर्ण शिक्षा तो यही थी और इस शिक्षा के शुभफल का एक अत्यंत आकर्षक और आदर्श उदाहरण उसके सामने था। सारिपुत्त को समझते देर नहीं लगी। यह गाथा सुन कर उनका मन प्रीति-सुख से भर गया। उनके भीतर अनित्यबोधिनी विपस्सना (विपश्यना) जाग उठी। उनके विरज-विमल धर्म-चक्षु खुल गये, जिससे उन्होंने अनुभव कर लिया कि –

यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मन्ति।

– विनयपिटक, महावग्ग ६०, सारिपुत्तमोग्गल्लानपब्बज्जाकथा

[जो कुछ उत्पत्तिधर्मा है, वह सब निरोधधर्मा है।]

इस प्रकार निरोध-निर्वाण, अर्थात अमृत, का अनुभव कर सारिपुत्त सोतापन्न हुए। वे प्रसन्न-चित्त हो, अपने मित्र मोग्गल्लान के पास गये। उन्हें सारी आप-बीती कह सुनायी। मोग्गल्लान भी विपुल पुण्य-पारमी के धनी थे। सुनते-सुनते उनके भी धर्म-चक्षु खुले, उन्होंने भी अमृत का पान किया और सोतापन्न हुए।

प्रव्रज्या

आयुष्मान सारिपुत्त से मोग्गल्लान ने कहा, "आयुष्मान, कितना विशुद्ध धर्म है भगवान का! हम लोग अब तक भ्रम में पड़े भटक रहे थे।"

"हां, अब हम भगवान के पास चलें, वही हमारे गुरु हैं", दोनों ने निश्चय किया।

दोनों परिव्राजक भगवान के पास जाने के लिए उद्यत हो गये। आचार्य के प्रति कृतज्ञता का भाव होने के कारण पहले वे अपने पूर्वगुरु गणाचार्य संजय परिव्राजक से मिलने चल पड़े। उन्होंने सोचा कि जो निर्मल धर्म प्राप्त हुआ है वह बड़ा ही कल्याणकारी है, उसके बारे में आचार्य को बतायें।

इसकी गहराई को समझ कर कदाचित वे भी श्रद्धापूर्वक भगवान के पास चलें। उन भगवान से धर्मोपदेश सुनकर आचार्य भी मार्गफल में प्रतिष्ठित हो सकेंगे। पर उससे पहले कोलित और उपतिस्स दोनों, गणाचार्य के ढाई सौ संन्यासी शिष्यों के पास पहुँचे। उनसे भिक्षु अस्सजि के बारे में और तथागत के धर्म से संबंधित सभी बातें बतायीं। सब कुछ सुनकर सारे शिष्य उनके साथ चलने के लिए सहमत हो गये। उन्होंने कहा, "आयुष्मानो, हमलोग आपके साथ आपके आश्रम में रहते हैं। यदि आपलोग महाश्रमण गोतम के शिष्य होंगे तो हमलोग भी आपका अनुसरण करेंगे।"

शिष्यों की सहमति पाकर दोनों तपस्वी अपने गुरु संजय परिव्राजक के पास पहुँचे। उन्हें अपना निश्चय सुनाया, "आचार्य, लोक में सम्यकसंबुद्ध उत्पन्न हुए हैं। वे हमारे गुरु हैं। हमलोग उन भगवान के पास जा रहे हैं। उनका धर्म सचमुच कल्याणकारी, मंगलकारी है। आपसे अनुरोध है कि आप भी चलें।"

आचार्य संजय ने उन्हें ही रुक जाने का परामर्श देते हुए कहा कि मैं नहीं जा सकता। इतने वर्षों से मैं स्वयं गणाचार्य रहा हूं। और मेरे इतने अधिक शिष्य हैं। यदि मैं स्वयं फिर किसी का शिष्य बन जाऊं तो यह मेरे लिए उचित नहीं होगा। इसलिए तुम्हारे साथ मेरा जाना नहीं हो सकता।

इस प्रकार उपतिस्स और कोलित द्वारा तीन बार जाने की बात कहने, पर तीनों बार परिव्राजक संजय द्वारा मना किये जाने पर भी वे नहीं रुके। "हम चलते हैं," ऐसा कहते हुए पूरे ढाई सौ शिष्यों के साथ सारिपुत्त और मोग्गल्लान वेळुवन गये; जहां भगवान विहार कर रहे थे। इतने सारे शिष्यों सहित दोनों प्रमुख परिव्राजकों के चले जाने पर परिव्राजक संजय का आचार्य-कुल लगभग छिन्न-भिन्न हो गया। इससे उन्हें जबरदस्त आघात लगा। और उनके मुँह से गर्म रक्त का स्राव होने लगा।

भगवान ने दूर से ही सारिपुत्त और मोग्गल्लान को आते हुए देख भिक्षुओ को संबोधित किया – "भिक्षुओ! दो मित्र कोलित (मोग्गल्लान) और उपतिस्स (सारिपुत्त) यहां आ रहे हैं। ये दोनों मेरे प्रधान शिष्य होंगे। अपने समस्त विकारों को भस्म कर ये गंभीर एवं अनुपम ज्ञानी, अनास्रव और मुक्त हो दुर्लभ निर्वाण को प्राप्त होंगे।"

सारिपुत्त और मोग्गल्लान, दोनों ही शास्ता के चरणों में सिर नवा कर कहने लगे, "भंते, भगवान हमें प्रव्रज्या दें, उपसंपदा दें।"

भगवान ने कहा – "भिक्षुओ! आओ (यह) धर्म सु-आख्यात है, इसमें कुछ भी गोपनीय नहीं। यह मार्ग सत्य का है। विकारों और दुःख के क्षय के लिए ब्रह्मचर्य का आचरण करो। यही तुम्हारी प्रव्रज्या है, यही तुम्हारी उपसंपदा है।"

भगवान के निर्देश पर अत्यंत हर्ष एवं श्रद्धापूर्वक शिष्यों सहित वे साधना में जुट गये।

इतने दिन भटकत फिरे, अंधी गलियन मांही,
अब तो पाया राजपथ, पीछे हटना नांही,
अब तो पाया विमल-पथ, पीछे मुड़ना नांही।

आयुष्मान सारिपुत्त की अर्हत्व-प्राप्ति

भगवान धर्मसभा में भिक्षुओं को धर्मदेशना दे रहे थे जिसे सुनकर दोनों अग्रश्रावकों को छोड़कर, शेष सभी श्रावक अर्हत्व अवस्था को प्राप्त हो गये। उपतिस्स और कोलित दोनों सोतापन्न ही रह गये, क्योंकि अपने एक पूर्व-जन्म में उन्होंने तत्कालीन बुद्ध से श्रावक पारमीज्ञान प्राप्त करने की भविष्यवाणी सुनी थी। मगध के ही कल्लावल ग्राम में विहार करते हुए कोलित प्रव्रजित होने के सातवें दिन भगवान से प्रोत्साहन और निर्देशन पाकर श्रावक पारमीज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुँच गये। उन्हीं दिनों उपतिस्स राजगह के पास सूकरखत में विहार करते थे। वहीं उनका भांजा परिव्राजक दीघनख भगवान के पास आया। आयुष्मान सारिपुत्त (उपतिस्स) भगवान के पीछे खड़े होकर उन्हें पंखा झल रहे थे। दीघनख परिव्राजक ने भगवान से यह कहा – "मैं इस वाद, दृष्टि को मानने वाला हूं – सभी (मत) मुझे अच्छे नहीं लगते।"

इस पर भगवान ने उसे बतलाया कि श्रमण-ब्राह्मण अपनी अपनी पसंद के अनुसार इन दृष्टियों को मानते हैं –

(१) 'हमें सभी मत अच्छे लगते हैं';

(२) 'हमें सभी मत अच्छे नहीं लगते';

(३) 'हमें कोई-कोई मत अच्छे लगते हैं, कोई-कोई नहीं।'

इनमें से पहली दृष्टि अ-सराग, अ-संयोग, अनू-उपादान के समीप होती है; दूसरी दृष्टि सराग, संयोग, उपादान के समीप; और तीसरी दृष्टि में दोनों का संमिश्रण रहता है।

फिर उन्होंने बतलाया कि इन दृष्टियों को कैसे छोड़ा जाता है। तदुपरांत उन्होंने यह भी बतलाया कि –

- चार महाभूतों से बनी इस काया की अनित्यता, दुःखता तथा अनात्मता को सम्यक प्रकार से देखने से इसके प्रति आसक्ति जाती रहती है।

- सुखद, दुःखद तथा अदुःखद-असुखद वेदनाओं को अनित्य, संस्कृत, प्रतीत्य-समुत्पन्न, क्षय-धर्मा, विराग-धर्मा, निरोध-धर्मा जानने से आर्य-श्रावक इनसे निर्वेद प्राप्त करता है, निर्वेद प्राप्त कर विरक्त होता है, विराग प्राप्त कर विमुक्त होता है, विमुक्त होने पर – 'मैं विमुक्त हूं!' - यह ज्ञान जागता है, और वह प्रज्ञापूर्वक जानने लगता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।' इस प्रकार विमुक्त-चित्त भिक्षु न किसी के साथ संवाद करता है, न विवाद।

भगवान के भाषित को सुन कर वहां पर विद्यमान आयुष्मान सारिपुत्त का चित्त आस्रवों से अलग हो मुक्त हो गया, क्योंकि उन्हें लगा कि भगवान उन्हें उन-उन धर्मों को छोड़ने के लिए कह रहे हैं। उधर दीघनख परिव्राजक को भी यह विरज, विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ – 'जो कुछ उत्पत्ति स्वभाव वाला है, वह निरोध स्वभाव वाला भी है ही।'

यह सब ऐसे ही हुआ जैसे भोजन तो दीघनख को दिया जा रहा हो और उसे खाता हुआ देखकर स्वास्थ्य-लाभ आयुष्मान सारिपुत्त कर रहे हों। यह सोचकर स्थविर गद्‌गद हो रहे थे कि 'शास्ता ने यह देशना उन्हीं के लिए दी है।'

इस प्रकार प्रव्रजित होने के पंद्रहवें दिन आयुष्मान सारिपुत्त ने यह अवस्था प्राप्त की। उन्होंने आयुष्मान मोग्गल्लान से अधिक समय लिया।

ऐसा क्यों?

जब किसी दीन-हीन पुरुष को कहीं जाना होता है तब वह शीघ्र ही तैयार होकर चला जाता है। परंतु जब किसी राजा को कहीं जाना होता है तब उसके साथ घोड़े, हाथी, अंगरक्षक इत्यादि को तैयार करना पड़ता है। अपने एक पूर्वजन्म में आयुष्मान सारिपुत्त ने संघ में भगवान के पश्चात प्रथम स्थान प्राप्त

करने का संकल्प लिया था। उसके लिए साधना में अधिक प्रयास, अधिक पराक्रम, अधिक निरंतरता, अधिक समय की आवश्यकता पड़ी। श्रेष्ठतर फल के लिए अधिक प्रयास और अधिक समय लगाना ही पड़ता है।

निजी साधना के प्रसंग

मोह-क्षय से भिक्षु स्थिर एवं शांत

एक समय भगवान सावत्थी (श्रावस्ती) में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान सारिपुत्त भगवान के निकट शरीर को सीधा किये स्मृतिमान हो आसन लगाये बैठे थे। भगवान ने आयुष्मान सारिपुत्त को उस अवस्था में बैठे हुए देखा। ऐसे समाधिस्थ और स्मृतिमान अवस्था में महाश्रावक को देखकर उस वेला में शास्ता के मुख से उदान के ये शब्द निकल पड़े –

"यथापि पब्बतो सेलो, अचलो सुप्पतिट्ठितो।
एवं मोहक्खया भिक्खु, पब्बतोव न वेधती"ति॥

– उदानपालि २४, सारिपुत्तसुत्त

['जैसे कोई पर्वत-शिखा अचल होकर खड़ी रहती है, वैसे ही मोह-क्षय करके भिक्षु स्थिर और शांत रहता है।']

पर्वत-शिखा अचल रहती है, पर्वत ऊपर जैसे।
छिन्न-मोह भिक्षुक रहता है, शांत और थिर वैसे॥

आस्रवों से मुक्त करने वाली प्रतिपदा

तब आयुष्मान महामोग्गल्लान आयुष्मान सारिपुत्त के पास गये और उनके साथ बातचीत की और कुशलक्षेम पूछा। कुशलक्षेम पूछने के बाद वह एक ओर जाकर बैठ गये। तब आयुष्मान सारिपुत्त से यह कहा –

"आयुष्मान सारिपुत्त! ये चार प्रतिपदाएं हैं – दुःखपूर्ण साधना विलंबित सिद्धि, दुःखपूर्ण साधना क्षिप्र सिद्धि, सुखपूर्ण साधना विलंबित सिद्धि, सुखपूर्ण साधना क्षिप्र सिद्धि।

"आयुष्मान सारिपुत्त! इन चारों प्रतिपदाओं में किस प्रतिपदा के अनुसार जीवन यापन करने से आपका चित्त आस्रवों से मुक्त हुआ?" इस पर आयुष्मान सारिपुत्त ने इस प्रकार उत्तर दिया – "आयुष्मान! ये चार प्रतिपदाएं हैं। इन चारों प्रतिपदाओं में से जो यह सुखपूर्ण साधना क्षिप्र सिद्धि वाली प्रतिपदा है, इसी के अनुसार जीवन-यापन से मेरा चित्त आस्रवों से मुक्त हुआ है।"

[*स्पष्टीकरण* –

दुःखपूर्ण साधना विलंबित सिद्धि – कोई व्यक्ति स्वभाव से तीव्र राग वाला, तीव्र द्वेष वाला, तीव्र मोह वाला होने पर बार-बार दुःख-दौर्मनस्य में से गुजरता है तथा ऐसे व्यक्ति की पांचों इंद्रियां (श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि एवं प्रज्ञा) भी नितांत दुर्बल होती हैं तो इस कारण वह विलंब से आस्रवों से मुक्त होता है।

दुःखपूर्ण साधना क्षिप्र सिद्धि – कोई व्यक्ति स्वभाव से तीव्र राग वाला, तीव्र द्वेष वाला, तीव्र मोह वाला होने पर बार-बार दुःख-दौर्मनस्य में से गुजरता है। परंतु ऐसे व्यक्ति की यदि पांचों इंद्रियां नितांत प्रबल होती हैं तो वह इस कारण शीघ्र ही आस्रवों से मुक्त हो जाता है।

सुखपूर्ण साधना विलंबित सिद्धि – यदि कोई व्यक्ति ऊपर वर्णित विपरीत स्वभाव वाला (अर्थात, न तीव्र रागवाला, न तीव्र द्वेषवाला, न तीव्र मोहवाला) हो तो वह बार-बार दुःख-दौर्मनस्य में से नहीं गुजरता है। और उसकी पांचों इंद्रियां दुर्बल हों तो वह अपने आस्रवों से विलंब से मुक्त हो पाता है।

सुखपूर्ण साधना क्षिप्र सिद्धि – यदि कोई व्यक्ति न तीव्र रागवाला, न तीव्र द्वेषवाला, न तीव्र मोहवाला हो तो वह बार-बार दुःख-दौर्मनस्य में से नहीं गुजरता है। उसकी पांचों इंद्रियां भी नितांत प्रबल होती हैं तो वह इस कारण शीघ्र ही अपने आस्रवों से मुक्त हो जाता है।]

–अङ्गुत्तरनिकाय (१.४.१६८), सारिपुत्तसुत्त

सात बोध्यंगों में विहार

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। वहां आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित किया –

'आयुष्मान भिक्षुओ!' 'आयुष्मान!' कहकर उन भिक्षुओं ने आयुष्मान सारिपुत्त को प्रतिवचन दिया। आयुष्मान सारिपुत्त ने यह कहा –

"आयुष्मानो! बोध्यंग सात हैं।

"कौन-से सात?

"स्मृति संबोध्यंग, धर्मविचय संबोध्यंग, वीर्य..., प्रीति..., प्रश्रब्धि..., समाधि... और उपेक्षा संबोध्यंग। आयुष्मानो! ये ही सात बोध्यंग हैं।

"आयुष्मानो! इनमें जिस-जिस बोध्यंग से मैं जिस-जिस समय – प्रातःकाल, मध्याह्न, सायंकाल – विहार करना चाहता हूं, उस-उस बोध्यंग से उस-उस समय विहार करता हूं।

"आयुष्मानो! यदि मेरे मन में स्मृति संबोध्यंग होता है, तो वह अप्रमाण मात्रा में अच्छी तरह आरंभ होता है। उसके उपस्थित रहने पर मैं जानता हूं, कि 'इस समय मेरे मन में स्मृति संबोध्यंग उपस्थित है' और उसके उपस्थित न रहने पर मैं यह भी जानता हूं कि 'इस समय मेरे मन में स्मृति संबोध्यंग उपस्थित नहीं है।'"

ऐसे ही आयुष्मान सारिपुत्त ने यह बताया कि जब-जब उनके मन में धर्मविचय संबोध्यंग, वीर्य संबोध्यंग, प्रीति....., प्रश्रब्धि...., समाधि... और उपेक्षा संबोध्यंग होते हैं, तब ये अप्रमाण मात्रा में अच्छी तरह पूरा-पूरा होते हैं। उनके उपस्थित रहने पर वह जानते हैं कि इस समय उनके मन में अमुक संबोध्यंग विद्यमान है और उनके उपस्थित न रहने पर वह भी यह जानते हैं कि इस समय उनके मन में अमुक संबोध्यंग उपस्थित नहीं है।

फिर एक उपमा द्वारा उन्होंने समझाया कि जैसे एक राजा या उसके अमात्य की पेटी हो। उसमें रंग-विरंगे वस्त्र भरे पड़े हों। राजा या अमात्य जिस-जिस समय – प्रातःकाल, मध्याह्न, सायंकाल – जिस-जिस रंग का वस्त्र पहनना चाहें उस-उस रंग का वस्त्र पेटी से निकाल कर पहन लें।

"आयुष्मानो! वैसे ही मैं जिस-जिस बोध्यंग में जिस-जिस समय विहार करना चाहता हूं उस-उस बोध्यंग में उस-उस समय विहार करता हूं।"

–संयुत्तनिकाय (३.५.१८५), वत्थसुत्त

नौ ध्यानों का साक्षात्कार

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। तब आयुष्मान सारिपुत्त ने पूर्वाह्णकाल में वस्त्र धारण कर, पात्र-चीवर ले, भिक्षा के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। सावत्थी में भिक्षाटन कर भोजन करने के उपरांत वे अंधवन में गये। अंधवन जाकर वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हो गये।

उस दिन सायंकाल ध्यान से उठकर आयुष्मान सारिपुत्त अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम गये। आयुष्मान आनन्द ने उन्हें दूर से ही आते हुए देखा। देखकर आयुष्मान सारिपुत्त से यह कहा – "आयुष्मान सारिपुत्त! आपकी इंद्रियां प्रसन्न हैं, मुख की कांति बड़ी शुद्ध है। आज आप कैसे विहार कर रहे थे?"

"यहां आयुष्मान! मैं कामभोगों एवं अकुशल धर्मों से दूर रहकर, वितर्क, विचार सहित विवेकजन्य, प्रीति-सुख वाले प्रथम ध्यान का लाभ कर विहार करता हूं। आवुस! तब मैं यह नहीं समझ रहा था कि 'मैं प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार कर रहा हूं या प्रथम ध्यान को प्राप्त कर लिया है या प्रथम ध्यान से उठ रहा हूं।"

तब आयुष्मान सारिपुत्त ने अन्य ध्यानों के बारे में अपने अनुभव बताते हुए कहा – "यहां आयुष्मान! मैं वितर्क विचार के शांत हो जाने से अध्यात्म-संप्रसाद, चित्त की एकाग्रता से युक्त, समाधिज प्रीति-सुख वाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूं।

"यहां आयुष्मान! मैं प्रीति से विरक्त होकर उपेक्षा के साथ विहार करता हूं, स्मृतिमान और संप्रज्ञ हो काया से सुख का अनुभव करते हुए – जिसे आर्य पुरुष कहते हैं कि उपेक्षा के साथ स्मृतिमान हो सुख से विहार करता है – इस तीसरे ध्यान को प्राप्त कर सुख से विहार करता हूं।

"यहां आयुष्मान! मैं सुख और दुःख के प्रहाण से, सौमनस्य और दौर्मनस्य के पूर्व में ही अस्त हो जाने से, अदुःख-असुखमय उपेक्षा एवं स्मृति-परिशुद्धि वाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूं।

"यहां आयुष्मान! मैं सर्वथा रूप संज्ञाओं के समतिक्रमण से, प्रतिघ संज्ञाओं के अस्त हो जाने से, नानात्व संज्ञाओं के अमनसिकार से, 'आकाश अनंत है' – ऐसा आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त कर विहार करता हूं।

"यहां आयुष्मान! मैं सर्वथा आकाशानन्त्यायतन का समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनंत है' ऐसा विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त कर विहार करता हूं।

"यहां आयुष्मान! मैं सर्वथा विज्ञानानन्त्यायतन का समतिक्रमण कर 'कुछ भी नहीं' ऐसा आकिंचन्यायतन को प्राप्त कर विहार करता हूं।

"यहां आयुष्मान! मैं सर्वथा आकिंचन्यायतन का समतिक्रमण कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त कर विहार करता हूं।

"यहां आयुष्मान! मैं नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का समतिक्रमण कर संज्ञावेदयितनिरोध को प्राप्त कर विहार करता हूं।"

किसी भी अवस्था में आयुष्मान सारिपुत्त को यह भान नहीं था कि 'मैं अमुक ध्यान को प्राप्त कर विहार कर रहा हूं या अमुक ध्यान को प्राप्त कर लिया है या अमुक ध्यान से उठ रहा हूं।"

आयुष्मान सारिपुत्त के अहंकार, ममकार, मान और अनुशय बहुत पहले ही नष्ट हो चुके थे। इसलिए उनको इसका पता भी नहीं था कि 'मैं अमुक ध्यान को प्राप्त कर रहा हूं, या मैंने अमुक ध्यान को प्राप्त कर लिया है या अमुक ध्यान से उठ रहा हूं।'

– संयुत्तनिकाय (२.३३२-३४०), विवेकजसुत्त, अवितक्कसुत्त, पीतिसुत्त, उपेक्खासुत्त, आकासानञ्चायतनसुत्त, विञ्ञाणञ्चायतनसुत्त, आकिञ्चञ्ञायतनसुत्त, नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसुत्त, निरोधसमापत्तिसुत्त

कल्याणमित्र का महत्त्व

सावत्थी का प्रसंग। तब आयुष्मान सारिपुत्त भगवान के पास गये और उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। तब आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान से यह कहा – "भंते! कल्याणमित्र के मिलने का अर्थ है ब्रह्मचर्य का नितांत सफल हो जाना।"

"सारिपुत्त! ठीक, बिल्कुल ठीक! कल्याणमित्र के मिलने का अर्थ है ब्रह्मचर्य का बिल्कुल ही सफल हो जाना। ऐसा विश्वास करना चाहिए कि कल्याणमित्र से समागम किया हुआ भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग को सुभावित करेगा ही, इसका बहुलीकरण करेगा ही।

"सारिपुत्त! कल्याणमित्र पा लेनेवाला भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग को कैसे भावित करता है, कैसे इसका बहुलीकरण करता है?

"यहां, सारिपुत्त! वह भिक्षु विवेक, वैराग्य और निरोध की ओर ले जानेवाली **सम्यकदृष्टि** की भावना (अभ्यास) करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है।

"विवेक, वैराग्य और निरोध की ओर ले जानेवाले **सम्यकसंकल्प** की भावना (अभ्यास) करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है।

"विवेक, वैराग्य और निरोध की ओर ले जानेवाली **सम्यकवाणी** की भावना (अभ्यास) करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है।

"विवेक, वैराग्य और निरोध की ओर ले जानेवाले **सम्यककर्मांत** की भावना (अभ्यास) करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है।

"विवेक, वैराग्य और निरोध की ओर ले जानेवाली **सम्यकआजीविका** की भावना (अभ्यास) करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है।

"विवेक, वैराग्य और निरोध की ओर ले जानेवाले **सम्यकव्यायाम** की भावना (अभ्यास) करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है।

"विवेक, वैराग्य और निरोध की ओर ले जानेवाली **सम्यकस्मृति** की भावना (अभ्यास) करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है।

"विवेक, वैराग्य और निरोध की ओर ले जानेवाली **सम्यकसमाधि** की भावना (अभ्यास) करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है।

"सारिपुत्त! इसे इस प्रकार भी जानना चाहिए कि कल्याणमित्र का मिलना ब्रह्मचर्य का बिल्कुल ही सफल हो जाना है। सारिपुत्त! मुझ कल्याणमित्र के **पास आकर जातिधर्मा (जन्म लेने के स्वभाव वाले)** प्राणी जन्म से मुक्त हो **जाते हैं; जराधर्मा (बूढ़ा होने के स्वभाव वाले)** प्राणी बुढ़ापे से मुक्त हो जाते **हैं; मरणधर्मा (मरने के स्वभाव वाले)** प्राणी मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं; जिन **प्राणियों का शोक, रोना-पीटना,** दुःखित होना, बेचैन और परेशान होना **स्वभाव है वे शोक, रोना-पीटना,** दुःखित होना, बेचैन और परेशान होने से **मुक्त हो जाते हैं।**

"सारिपुत्त! कल्याणमित्र का मिलना ब्रह्मचर्य का नितांत ही सफल हो जाना है।"

–संयुत्तनिकाय (३.५.३), सारिपुत्तसुत्त

महापुरुष कौन होता है?

सावत्थी का प्रसंग। तब आयुष्मान सारिपुत्त भगवान के पास गये और उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। तब आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान से यह कहा – "भंते! 'महापुरुष, महापुरुष' कहा जाता है, क्या होने से कोई महापुरुष होता है?"

"सारिपुत्त! चित्त के विकारों से विमुक्त होने पर कोई महापुरुष होता है। विकारों से विमुक्त चित्त वाले पुरुष को ही मैं महापुरुष कहता हूं। चित्त के विकारों से विमुक्त नहीं होने पर कोई महापुरुष नहीं होता। ऐसे विकारों से अविमुक्त चित्त वाले पुरुष को मैं महापुरुष नहीं कहता।"

"सारिपुत्त! कोई चित्त के विकारों से विमुक्त कैसे होता है?"

"सारिपुत्त! कोई भिक्षु (साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है। इस प्रकार काया में कायानुपश्यना करने से चित्त वैराग्य प्राप्त करता है और उपादानरहित हो आस्रवों से मुक्त हो जाता है।

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है। इस प्रकार वेदनाओं में वेदनानुपश्यना करने से चित्त वैराग्य प्राप्त करता है और उपादानरहित हो आस्रवों से मुक्त हो जाता है।

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहार करता है। इस प्रकार चित्त में चित्तानुपश्यना करने से चित्त वैराग्य प्राप्त करता है और उपादानरहित हो आस्रवों से मुक्त हो जाता है।

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, धर्म में धर्मानुपश्यी होकर विहार

करता है। इस प्रकार धर्म में धर्मानुपश्यना करने से चित्त वैराग्य प्राप्त करता है और उपादानरहित हो आस्रवों से मुक्त हो जाता है।

"सारिपुत्त! इस प्रकार चित्त के विकारों से मुक्त होने से ही कोई महापुरुष होता है। चित्त के विकारों से अविमुक्त होने पर कोई महापुरुष नहीं होता। ऐसा मैं कहता हूं।"

–संयुत्तनिकाय (३.५.३७७), महापुरिससुत्त

संक्षिप्त एवं विस्तृत उपदेश

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त भगवान के पास गये और उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। तब आयुष्मान सारिपुत्त से भगवान ने यह कहा–

"सारिपुत्त! मैं संक्षेप में भी धर्मोपदेश देता हूं, विस्तार से भी धर्मोपदेश देता हूं, संक्षिप्त-विस्तृत रूप से भी धर्मोपदेश देता हूं, किंतु उसके समझने वाले दुर्लभ हैं।"

"भगवान! इसी का समय है। सुगत! इसी का समय है। भगवान संक्षेप में भी धर्मोपदेश दें, विस्तार से भी धर्मोपदेश दें, संक्षिप्त-विस्तृत रूप से भी धर्मोपदेश दें; धर्म के समझने वाले होंगे।"

"तो सारिपुत्त! इस कारण ठीक इसी प्रकार सीखना चाहिए – इस सविज्ञान शरीर में अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होगा, इससे बाहर सभी निमित्तों से भी अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होगा, जिस चित्त-विमुक्ति, जिस प्रज्ञा-विमुक्ति को प्राप्त कर विहार करने पर अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होते, उस चित्त-विमुक्ति, उस प्रज्ञा-विमुक्ति को प्राप्त कर विहार करेंगे। हे सारिपुत्त! ठीक इसी प्रकार सीखना चाहिए।

"क्योंकि सारिपुत्त! इस सविज्ञान शरीर में भिक्षु के मन में अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होते, इससे बाहर के सभी निमित्तों में भी अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होते, जिस चित्त-विमुक्ति, जिस प्रज्ञा-विमुक्ति को प्राप्त कर अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होते उस चित्त-विमुक्ति को, उस प्रज्ञा-विमुक्ति को प्राप्त कर विहार करता है। हे सारिपुत्त! ऐसे भिक्षु के विषय में

कहा जाता है कि इसने तृष्णा को छिन्न-भिन्न कर दिया, संयोजनों को निर्मूल कर दिया और मान को संपूर्ण रूप से समझकर दुःख का अंत कर दिया।

"सारिपुत्त! उदय-प्रश्न पारायण में जो मैंने यह कहा वह उक्त अर्थ में ही कहा –

"कामनाओं तथा दौर्मनस्यों – इन दोनों का प्रहाण, आलस्य का नाश तथा कौकृत्य का निवारण, उपेक्षा तथा स्मृति की परिशुद्धि, सम्यकसंकल्प (धर्म-तर्क) ही अग्रणी होता है (मार्गदर्शन करता है) तथा अविद्या का प्रभेदन जहां है वहीं विमुक्ति है – ऐसा मैं कहता हूं।"

–अङ्गुत्तरनिकाय (१.३.३३), सारिपुत्तसुत्त

प्रज्ञावानों में अग्र

सारिपुत्त की पहचान

एक समय भगवान राजगह में गिज्झकूट (गृध्रकूट) पर्वत पर विहार करते थे। उस समय आयुष्मान सारिपुत्त कुछ भिक्षुओं के साथ भगवान से कुछ ही दूरी पर चंक्रमण कर रहे थे। आयुष्मान महामोग्गल्लान, आयुष्मान महाकस्सप, आयुष्मान अनुरुद्ध, आयुष्मान पुण्ण मन्ताणिपुत्त, आयुष्मान उपालि, आयुष्मान आनन्द और देवदत्त भी कुछ भिक्षुओं के साथ कुछ दूरी पर चंक्रमण कर रहे थे। भगवान ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया –

"भिक्षुओ! तुम सारिपुत्त को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी भिक्षु बड़े प्रज्ञा वाले हैं।

"भिक्षुओ! तुम मोग्गल्लान को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी भिक्षु बड़े ऋद्धि वाले हैं।

"भिक्षुओ! तुम कस्सप को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी भिक्षु धुतंग धारण करने वाले हैं।

"भिक्षुओ! तुम अनुरुद्ध को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां भंते!"

"भंते! यह आर्य अष्टांगिक मार्ग ही स्रोत (मुक्ति-स्रोत) है। जो है – सम्यकदृष्टि, सम्यकसंकल्प, सम्यकवाणी, सम्यककर्मांत, सम्यकआजीविका, सम्यकव्यायाम, सम्यकस्मृति और सम्यकसमाधि।"

"साधु सारिपुत्त! साधु! यह आर्य अष्टांगिक मार्ग ही स्रोत है। जो है – सम्यकदृष्टि, सम्यकसंकल्प, सम्यकवाणी, सम्यककर्मांत, सम्यकआजीविका, सम्यकव्यायाम, सम्यकस्मृति और सम्यकसमाधि।"

"सारिपुत्त! 'सोतापन्न, सोतापन्न' कहा जाता है, क्या होने से कोई सोतापन्न होता है?"

"भंते! जो आर्य अष्टांगिक मार्ग से युक्त हैं, इनका सेवन करते हैं, इनका चिंतन-मनन करते हैं, इनका अभ्यास करते हैं, इनमें अवगाहन करते हैं, जो आयुष्मान इस नाम के हैं, इस गोत्र के हैं, उन्हें सोतापन्न कहा जाता है।"

"साधु सारिपुत्त! साधु" ऐसा कहते हुए भगवान ने आयुष्मान सारिपुत्त के कथन का अनुमोदन किया।

–संयुत्तनिकाय (३.५.१००१), दुतियसारिपुत्तसुत्त

दुःख प्रतीत्य-समुत्पन्न है

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त प्रातःकाल सुआच्छादित हो, राजगह में भिक्षाटन के लिए निकले। तब उनके मन में ऐसा हुआ – 'भिक्षाटन के लिए अभी जल्दी है, क्यों न मैं अन्यतैर्थिक परिव्राजकों के आराम चलूं!' तब आयुष्मान सारिपुत्त अन्यतैर्थिक परिव्राजकों के पास पहुँचकर उनका कुशल-क्षेम पूछने के बाद एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे आयुष्मान सारिपुत्त से अन्यतैर्थिक परिव्राजक ने कहा – "आवुस सारिपुत्त!

१. कुछ श्रमण या ब्राह्मण कर्मवादी हैं जो दुःख को अपना स्वयं किया हुआ बतलाते हैं।

२. कुछ श्रमण या ब्राह्मण कर्मवादी दुःख को दूसरों का किया हुआ बतलाते हैं।

३. कुछ श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी दुःख को अपना स्वयं किया हुआ और दूसरों का किया हुआ भी बताते हैं।

४. कुछ श्रमण या ब्राह्मण कर्मवादी दुःख को न तो अपना स्वयं किया हुआ, न ही दूसरों का किया हुआ बताते हैं बल्कि अकारण घटित हुआ बतलाते हैं। आयुष्मान सारिपुत्त! इस विषय में श्रमण गोतम का क्या कहना है? किस प्रकार हम श्रमण गोतम के सिद्धांत को यथार्थ रूप से बता सकते हैं, जिससे उनके सिद्धांत में उलट-फेर न होने पाये। हम जो कुछ भी कहें वह उनके धर्म के अनुकूल हो, जिसके कहने पर किसी सहधर्मी को दोष न लगे।"

आयुष्मान सारिपुत्त ने कहा – "आयुष्मानो! भगवान ने दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न (कारण से उत्पन्न) बतलाया है। किसके प्रत्यय (कारण) से? स्पर्श के प्रत्यय से। ऐसा कहकर आप भगवान के सिद्धांत को यथार्थ रूप में बता सकते हैं। इससे भगवान के सिद्धांत में कोई उलट-फेर नहीं होने पायगा। आप जो कुछ कहेंगे वह उनके धर्म के अनुकूल होगा। ऐसा कहने से किसी सहधर्मी को दोष भी नहीं लगेगा।

"आयुष्मानो! जो श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी दुःख को अपना स्वयं किया हुआ बताते हैं, वह भी स्पर्श के प्रत्यय से ही उत्पन्न होता है। जो श्रमण और ब्राह्मण दुःख को दूसरों का किया हुआ बताते हैं, या जो श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी दुःख को अपना स्वयं किया हुआ और दूसरों का भी किया हुआ बताते हैं, या जो श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी दुःख को न तो अपना किया हुआ, न ही दूसरों का किया हुआ बताते हैं बल्कि अकारण घटित हुआ बतलाते हैं वह भी स्पर्श के प्रत्यय से ही समुत्पन्न होता है। आयुष्मानो! स्पर्श के बिना कोई कुछ भी अनुभव कर ले, यह संभव ही नहीं है।"

आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान सारिपुत्त और अन्यतीर्थिक परिव्राजकों के बीच हुए कथा-संलाप को सुना। वे भिक्षाटन से लौटे और भोजन करके भगवान के पास गये। उनका अभिनंदन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान सारिपुत्त और अन्यतीर्थिक परिव्राजकों के बीच हुए कथा-संलाप को अक्षरशः भगवान को सुनाया।

भगवान ने आयुष्मान सारिपुत्त के कथन को एकदम सही बतलाया। उन्होंने कहा कि अविद्या के पूर्णतया निरोध से वह कर्म नहीं होता, जिससे सुख-दुःख उत्पन्न हों।

– संयुत्तनिकाय (१.२.२४), अञ्ञतित्थियसुत्त

गृहस्थ जीवन में लौटने के कारण

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। एक भिक्षु उनके पास आया और उनका अभिवादन करके एक ओर बैठ गया।

तब उस भिक्षु ने आयुष्मान सारिपुत्त से कहा – "आयुष्मान! मेरा एक शिष्य धर्म-शिक्षा छोड़ कर घर-गृहस्थी में लौट गया।"

आयुष्मान सारिपुत्त बोले – "आवुस! जो इंद्रियों में संयत न हो, भोजन में मात्रज्ञ न हो, जो जागरणशील न हो उसका यही हाल होता है। ऐसे व्यक्ति से जीवनपर्यंत पूर्ण, परिशुद्ध, ब्रह्मचर्यवास की आशा नहीं रखनी चाहिए।"

"आयुष्मान सारिपुत्त! कोई व्यक्ति इंद्रियों में संयत कैसे होता है?"

"आवुस! भिक्षु चक्षु से रूप देखकर ललचाता नहीं, उसमें रस नहीं लेता, यदि ऐसा करता है, तो उसमें लोभ, द्वेष और पापमय अकुशल धर्म प्रवेश कर जाते हैं। अतः उसके संवर के लिए प्रयत्नशील होता है। चक्षुइंद्रिय की रक्षा करता है। चक्षुइंद्रिय को संयत कर लेता है।

"इसी प्रकार श्रोत्र से शब्द सुनकर, जिह्वा से रस चखकर, घ्राण से गंध सूंघकर, त्वचा से स्पर्शकर तथा मन से धर्मों को जानकर, ललचाता नहीं, उसमें रस नहीं लेता। यदि ऐसा करता है, तो उसमें लोभ, द्वेष और पापमय अकुशल धर्म प्रवेश कर जाते हैं। अतः इनके संवर के लिए भिक्षु प्रयत्नशील रहता है। इंद्रिय विषयों में अरमण कर उन्हें संयत रखता है। इस प्रकार कोई भिक्षु इंद्रियों में संयत होता है।"

"आयुष्मान! कोई व्यक्ति भोजन में मात्रज्ञ कैसे होता है?"

"आयुष्मान! भिक्षु ज्ञानपूर्वक ठीक से आहार ग्रहण करता है न क्रीड़ा के लिए, न मद के लिए, न शरीर को मंडित करने के लिए और न विभूषित करने के लिए, बल्कि उतना ही आहार ग्रहण करता है जिससे इस काया की स्थिति बनी रहे, भूख के कारण जो दर्द हो उससे उपरत रहने के लिए तथा ब्रह्मचर्य का अभ्यास ठीक से हो सके इसके लिए बाकी पुरानी वेदनाओं को दूर करें, नयी वेदना उत्पन्न न हो और जीवन यात्रा निर्दोष तथा सुखपूर्वक हो। इस प्रकार भिक्षु भोजन में मात्रज्ञ होता है।"

"आयुष्मान सारिपुत्त! कोई व्यक्ति सदैव कैसे जागरणशील होता है?"

"आवुस! भिक्षु दिन में चंक्रमण कर, आसन लगाकर, चित्त को अकुशल धर्मों से शुद्ध रखता है। रात्रि के प्रथम याम में चंक्रमण कर और आसन लगा अकुशल धर्मों से चित्त को शुद्ध रखता है। रात्रि के मध्य याम में दाहिने करवट लेट, पैर पर पैर रख, सिंहशैय्या लगा, स्मृतिमान, संप्रज्ञ और उत्साहित रहता है। रात्रि के पिछले याम में चंक्रमण के बाद आसन लगाकर अकुशल धर्मों से चित्त को शुद्ध रखता है। आवुस! इस प्रकार कोई व्यक्ति सदैव जागरणशील रहता है।

"आवुस! ऐसा सीखना चाहिए – इंद्रियों में संयत रहूंगा, भोजन में मात्रज्ञ होऊंगा और सदैव जागरणशील रहूंगा।"

"आवुस! ऐसा ही सीखना चाहिए।"

–संयुत्तनिकाय (२.४.१२०), सारिपुत्तसद्धिविहारिकसुत्त

विरोधी भावों के शमन के उपाय

धर्मसेनापति सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित किया– "आयुष्मान भिक्षुओ!" "आयुष्मान!" कहकर उन भिक्षुओं ने आयुष्मान सारिपुत्त को प्रत्युत्तर दिया।

आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को यह कहा – "आयुष्मानो! (नीचे वर्णित पांच प्रकार के) व्यक्ति के प्रति मन में उत्पन्न विरोधभाव के उपशमन के लिए ये पांच आघातप्रतिविनय हैं। भिक्षु को चाहिए कि इन व्यक्तियों के प्रति विरोधभाव के उत्पन्न होने पर इनका सर्वथा उपशमन करे।"

(१) कायिक कर्म अशुद्ध, किंतु वाचिक कर्म शुद्ध वाला व्यक्ति।

(२) कायिक कर्म शुद्ध, किंतु वाचिक कर्म अशुद्ध वाला व्यक्ति।

(३) कायिक एवं वाचिक कर्म से अशुद्ध किंतु थोड़े समय के लिए चित्त की शुद्धि से युक्त एवं प्रीतियुक्त रहने वाला व्यक्ति।

(४) कायिक एवं वाचिक कर्मों से अशुद्ध व्यक्ति जो कि थोड़े समय के लिए भी न चित्त की शुद्धि की प्राप्ति करता है और न ही प्रीतियुक्त होता है।

(५) कायिक, वाचिक कर्मों से शुद्ध रहने वाला व्यक्ति जो बीच-बीच में चित्त की शुद्धि एवं प्रीतियुक्त होता है।

आयुष्मान सारिपुत्त ने विभिन्न दृष्टांतों सहित पांच प्रकार के व्यक्तियों के प्रति उत्पन्न विरोधभावों के उपशमन के उपाय बतलाये।

(१) **कायिक कर्म अशुद्ध, किंतु वाचिक कर्म शुद्ध वाले व्यक्ति के प्रति उत्पन्न विरोधभाव का शमन :** जैसे कोई पांशुकूलिक भिक्षु हो, जो चीथड़ों से बने वस्त्र ही पहनता हो, उसे गली में कोई चीथड़ा मिल जाये तो वह उसमें से का उपयोगी भाग फाड़कर, उसे लेकर आगे बढ़ जाता है। ठीक इसी प्रकार व्यक्ति के अशुद्ध कायिक कर्मों की उपेक्षा करते हुए एवं शुद्ध वाचिक कर्मों को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार के व्यक्ति के प्रति मन में उत्पन्न विरोधभाव का उपशमन करना चाहिए।

(२) **कायिक कर्म शुद्ध, किंतु वाणी के कर्म अशुद्ध वाले व्यक्ति के प्रति उत्पन्न विरोधभाव का शमन :** जैसे शुद्ध जलवाली पुष्करिणी (तालाब) शैवाल से ढकी हो, गर्मी की तपिश से व्याकुल, थका-मांदा प्यासा कोई व्यक्ति उस पुष्करिणी में उतरकर दोनों हाथ से शैवाल हटाकर अंजलिभर भर कर अपनी प्यास बुझाये। ठीक इसी प्रकार व्यक्ति के अशुद्ध वाणी के कर्मों की उपेक्षा करते हुए एवं शुद्ध कायिक कर्मों को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार के व्यक्ति के प्रति मन में उत्पन्न विरोधभाव का उपशमन करना चाहिए।

(३) **कायिक एवं वाचिक कर्म से अशुद्ध किंतु थोड़े समय के लिए चित्त की शुद्धि से युक्त एवं प्रीतियुक्त रहने वाले व्यक्ति के प्रति उत्पन्न विरोधभाव का उपशमन :** जैसे किसी गोष्पद (गाय के खुर से बने गड्ढे) में जल भरा हो। गर्मी की तपिश से व्याकुल, थका-मांदा प्यासा कोई व्यक्ति उस स्थान पर आये और ऐसा चिंतन करे – 'अगर गोष्पद में भरे जल को मैं अंजलि या पात्र में भरकर पीऊं तो यह संभव है कि जल मटमैला हो जाय। उचित होगा कि इस जल को मैं दोनों घुटनों तथा दोनों हाथों के बल झुककर गाय-बैल की भांति पीकर आगे बढ़ जाऊं।' वह ऐसा करता हुआ आगे बढ़ जाता है। ठीक इसी प्रकार व्यक्ति के कायिक एवं वाचिक अशुद्ध कर्मों की तरफ ध्यान न देते हुए बीच-बीच में प्राप्त कर्मों की शुद्धि एवं चित्त में जागी प्रीति की ओर ध्यान देते हुए इस प्रकार के व्यक्ति के प्रति चित्त में उत्पन्न विरोधभाव का उपशमन करना चाहिए।

(४) कायिक एवं वाचिक कर्मों से अशुद्ध व्यक्ति जो कि थोड़े समय के लिए भी न चित्त की शुद्धि को प्राप्त करता है – और न ही प्रीतियुक्त होता है ऐसे व्यक्ति के प्रति उत्पन्न विरोधभाव का उपशमन : जैसे कोई रोग से पीड़ित, दुःखी, खिन्न मन वाला व्यक्ति किसी राह में जा रहा हो। उसके आगे-पीछे के गांव भी बहुत दूर हों। उसको न तो रोगानुकूल पथ्य, न ही औषध, और न ही कोई योग्य परिचारक और न ही कोई ऐसा व्यक्ति जो उसको किसी गांव के समीप पहुँचा दे। उस स्थिति में उसे देखकर किसी व्यक्ति के मन में करुणा जागे – 'अरे! इस व्यक्ति को रोग के निदान हेतु अनुकूल पथ्य, अनुकूल औषध, योग्य परिचारक एवं कोई ऐसा पुरुष मिले जो इसकी मदद कर सके जिससे कि यह एकांत में मृत्यु को प्राप्त न हो जाय।' ऐसे व्यक्ति के प्रति दया, करुणा एवं अनुकंपा का भाव रखना चाहिए जिससे कि वह कायिक, वाचिक, मानसिक दुश्चरित्रता को छोड़कर सुचरित्रता का जीवन व्यतीत कर सके। ताकि ऐसा व्यक्ति काया के छूटने पर, मरने के उपरांत नरक में पड़कर दुर्गति प्राप्त न करे। इस प्रकार उस व्यक्ति के प्रति चित्त में उत्पन्न विरोधभाव का उपशमन करना चाहिए।

(५) कायिक, वाचिक कर्मों से शुद्ध रहने वाला व्यक्ति जो बीच-बीच में चित्त की शुद्धि एवं प्रीति प्राप्त करता है – ऐसे व्यक्ति के प्रति उत्पन्न विरोधभाव का उपशमन : जैसे कोई स्वच्छ, शीतल, अच्छे घाटों वाली, रमणीय तथा नाना प्रकार के वृक्षों से आच्छादित पुष्करिणी हो। गर्मी की तपिश से व्याकुल, थका-मांदा प्यासा कोई व्यक्ति उस पुष्करिणी में उतरकर स्नान कर, जल पीकर बाहर आकर वहीं वृक्ष की छाया में बैठ जाय या लेट जाय। इसी प्रकार कायिक, वाचिक कर्मों से शुद्ध रहने वाला व्यक्ति जो कि बीच-बीच में चित्त की शुद्धि एवं प्रीति प्राप्त करता है, उसके शुद्ध कायिक, वाचिक, मानसिक कर्मों की तरफ ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार ऐसे व्यक्ति के प्रति चित्त में उत्पन्न विरोधभाव का उपशमन करना चाहिए।

आयुष्मानो! ये पांच विरोधीभाव के उपशमन हैं। भिक्षुओं को चाहिए कि वे इन पांचों विरोधीभावों के उत्पन्न होने पर उनका सर्वथा उपशमन करें।

–अङ्गुत्तरनिकाय (२.५.१६२), दुतियआघातपटिविनयसुत्त

'सम्यकदृष्टि' की व्याख्या

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे।

वहां आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित किया – "आयुष्मान भिक्षुओ!" उन भिक्षुओं ने प्रत्युत्तर दिया – "आयुष्मान!"

आयुष्मान सारिपुत्त ने कहा– "आयुष्मानो! जो यह 'सम्यकदृष्टि', 'सम्यकदृष्टि' कहा जाता है, तो कैसे कोई आर्यश्रावक सम्यकदृष्टिक होता है? वह कैसे सीधी दृष्टि वाला, धर्म में प्रगाढ़ श्रद्धा रखने वाला तथा सद्धर्म को प्राप्त करने वाला होता है?"

भिक्षुओं ने कहा– "आयुष्मान! आपके इस कथन का अर्थ जानने-समझने के लिए हम दूर-दूर से आपके पास आये हैं। अच्छा हो कि आयुष्मान! आप ही इस कथन का अर्थ स्पष्ट करें। आयुष्मान के मुख से सुनकर हम सभी जानेंगे और धारण करेंगे।"

"तो आयुष्मानो! अच्छी तरह मन लगाकर सुनो, मैं कहता हूं।"

"अच्छा, आयुष्मान!" भिक्षुओं ने प्रत्युत्तर दिया।

"जब आर्यश्रावक अकुशल (बुराई) को जानता है, अकुशल-मूल को जानता है, कुशल (भलाई) को जानता है, कुशल-मूल को जानता है – इतने से वह सम्यकदृष्टिक होता है। उसकी दृष्टि सीधी होती है, वह धर्म में प्रगाढ़ श्रद्धा वाला होता है और सद्धर्म को प्राप्त होता है।

"अकुशल होते हैं – प्राणियों की हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ बोलना, चुगली करना, कठोर वचन बोलना, व्यर्थ प्रलाप करना, लोलुपता, प्रतिहिंसा और मिथ्यादृष्टि (गलत धारणा)। अकुशल-मूल हैं – लोभ, दोष तथा मोह।

"कुशल होते हैं – प्राणियों की हिंसा न करना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, झूठ न बोलना, चुगली न करना, कठोर वचन न बोलना, व्यर्थ प्रलाप न करना, लोलुपता का अभाव, प्रतिहिंसा का अभाव और सम्यकदृष्टि (सही धारणा)। कुशल-मूल हैं – अ-लोभ, अ-द्वेष तथा अ-मोह।

"जब आर्यश्रावक इस प्रकार अकुशल, अकुशल-मूल, कुशल तथा कुशल-मूल को जानता है तब वह रागानुशय का प्रहाण कर, प्रतिघ

(प्रतिहिंसा)-अनुशय को दूर कर, 'अस्मि' (मैं हूं) - इस दृष्टिमान-अनुशय का समुच्छेद कर, अविद्या को नष्ट कर, विद्या को उत्पन्न कर, इसी जीवन में दुःखों का अंत करने वाला होता है - इतने से भी आर्यश्रावक सम्यकदृष्टिक होता है। उसकी दृष्टि सीधी होती है, वह प्रगाढ़ श्रद्धा वाला होता है और सद्धर्म को प्राप्त करता है।"

तदनंतर आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं के लिए अन्य धर्म-पर्याय भी प्रस्तुत किये जिनसे आर्यश्रावक सम्यकदृष्टिक होता है। ये पर्याय हैं -

- जब वह प्रज्ञापूर्वक आहार, आहार का समुदय, आहार का निरोध, तथा आहार का निरोध कराने वाले मार्ग (उपाय) को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक दुःख, दुःख का समुदय, दुःख का निरोध तथा दुःख का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक जरा-मरण, जरा-मरण का समुदय, जरा-मरण का निरोध तथा जरा-मरण का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक जाति (जन्म), जाति का समुदय, जाति का निरोध तथा जाति का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक भव, भव का समुदय, भव का निरोध तथा भव का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक उपादान, उपादान का समुदय, उपादान का निरोध तथा उपादान का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक तृष्णा, तृष्णा का समुदय, तृष्णा का निरोध तथा तृष्णा का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक वेदना, वेदना का समुदय, वेदना का निरोध तथा वेदना का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक स्पर्श, स्पर्श का समुदय, स्पर्श का निरोध तथा स्पर्श का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक छः आयतनों, इनका समुदय, इनका निरोध तथा इनका निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक नामरूप, नामरूप का समुदय, नामरूप का निरोध तथा नामरूप का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक विज्ञान, विज्ञान का समुदय, विज्ञान का निरोध तथा विज्ञान का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक संस्कार, संस्कार का समुदय, संस्कार का निरोध तथा संस्कार का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक अविद्या, अविद्या का समुदय, अविद्या का निरोध तथा अविद्या का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक आस्रव, आस्रव का समुदय, आस्रव का निरोध तथा आस्रव का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है। और यह जो सारे मार्ग बतलाये गये हैं, यह 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' ही है, अर्थात सम्यकदृष्टि, सम्यकसंकल्प, सम्यकवाणी, सम्यककर्मांत, सम्यकआजीविका, सम्यकव्यायाम, सम्यकस्मृति, सम्यकसमाधि।

–मज्झिमनिकाय (१.१.८९-१०४), सम्मादिट्ठिसुत्त

महाश्रावकों के साथ संवाद

अनुरुद्ध की कठिनाई का निवारण

एक बार आयुष्मान अनुरुद्ध आयुष्मान सारिपुत्त के पास पहुँचे। पास जाकर उनके साथ कुशलक्षेम की बातचीत की। कुशलक्षेम की बातचीत समाप्त कर आयुष्मान अनुरुद्ध एक ओर बैठ गये। तब आयुष्मान अनुरुद्ध ने आयुष्मान सारिपुत्त को कहा –

"आयुष्मान सारिपुत्त! मैं अलौकिक, विशुद्ध, दिव्य चक्षु से सहस्रों लोकों को देखता हूं। मेरा आलस्य-रहित प्रयत्न आरंभ है। उपस्थित-स्मृति मूढ़ता-विहीन है। शांत-शरीर उत्तेजना-रहित है। समाहित-चित्त एकाग्र है। लेकिन तब भी मेरा चित्त उपादान-रहित होकर आस्रवों से विमुक्त नहीं होता।"

"आयुष्मान अनुरुद्ध! आपके मन में जो यह होता है कि मैं अलौकिक, विशुद्ध, दिव्य चक्षु से सहस्रों लोकों को देखता हूं - यह आपका मान (अहंकार) है। आयुष्मान अनुरुद्ध! आपके मन में जो यह होता है कि मेरा आलस्य-रहित प्रयत्न आरंभ है, उपस्थित-स्मृति मूढ़ता-विहीन है, शांत-शरीर उत्तेजना-रहित है, समाहित-चित्त एकाग्र है - यह आपका उद्धतपन है। आयुष्मान अनुरुद्ध! आप के मन में जो यह होता है कि मेरा चित्त उपादान-रहित होकर आस्रवों से विमुक्त नहीं होता – यह आपका कौकृत्य (पश्चात्ताप) है। आयुष्मान अनुरुद्ध! अच्छा होगा यदि आप इन तीनों बातों को छोड़कर, इन तीनों धर्मों को मन से निकालकर चित्त को अमृत-धातु (=निर्वाण) की ओर केंद्रित करें।"

तब आगे चलकर आयुष्मान अनुरुद्ध ने इन तीनों बातों को छोड़कर, इन तीनों धर्मों को मन से निकालकर, चित्त को अमृत-धातु की ओर केंद्रित किया। तब (उन धर्मों से) हट जाने से, अप्रमादी होकर प्रयत्न करने से, यत्नवान होकर विहार करने से आयुष्मान अनुरुद्ध ने अचिरकाल में ही, जिसके लिए कुलपुत्र घर का त्यागकर बेघर हो जाते हैं, उस ब्रह्मचर्य-मय सर्वश्रेष्ठ (पद) को इसी जीवन में, स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार किया। उन्होंने जान लिया कि जन्म (का कारण) क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया, करणीय समाप्त हो गया और यहां के लिए (अर्थात फिर जन्म लेने के लिए) कुछ शेष नहीं रहा। आयुष्मान अनुरुद्ध अर्हंतों में से एक हुए।

–अङ्गुत्तरनिकाय (१.३.१३१), दुतियअनुरुद्धसुत्त

बोध्यंगों की सिद्धि का ज्ञान

एक समय आयुष्मान उपवान व आयुष्मान सारिपुत्त कोसाम्बी के घोसिताराम में विहार करते थे। तब आयुष्मान सारिपुत्त सायंकाल ध्यान से उठ आयुष्मान उपवान के पास गये और कुशलक्षेम की बातचीत की। कुशलक्षेम की बातचीत समाप्त कर आयुष्मान सारिपुत्त एक ओर बैठ गये। तब आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान उपवान को यह कहा -

"आयुष्मान उपवान! क्या भिक्षु जानता है कि मेरे अंदर भीतर-ही-भीतर अच्छी तरह चिंतन-मनन करने से सातों बोध्यंग सिद्ध होकर सुखपूर्वक विहार करने योग्य हो गये हैं?"

"हां आयुष्मान! भिक्षु यह जानता है कि मेरे अंदर भीतर-ही-भीतर अच्छी तरह चिंतन-मनन करने से सातों बोध्यंग सिद्ध होकर सुखपूर्वक विहार करने योग्य हो गये हैं।

"भिक्षु यह जानता है, कि मेरे अंदर स्मृति संबोध्यंग सिद्ध होकर सुखपूर्वक विहार करने योग्य हो गया है। वह जानता है, कि मेरा आलस्य समूल नष्ट हो गया है। औद्धत्य-कौकृत्य बिल्कुल समाप्त हो गये हैं। किसी प्रकार का संदेह नहीं रहा। मैं पूरा प्रयत्नशील हूं। मन परमार्थ में लीन है और चित्त विकारों से पूर्णतया विमुक्त हो गया है।"

आयुष्मान उपवान ने शेष छह बोध्यंगों – धर्म-विचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि, उपेक्षा के संबंध में भी इसी प्रकार बतलाया।

–संयुत्तनिकाय (३.५.१८९), उपवानसुत्त

सोतापन्न चार गुणों से युक्त

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान आनन्द सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। तब सायंकाल आयुष्मान आनन्द आयुष्मान सारिपुत्त के पास आये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान सारिपुत्त से पूछा – "आवुस सारिपुत्त! कितने धर्मों से युक्त होने से भगवान ने किसी को सोतापन्न बतलाया है, जो मार्ग से च्युत नहीं हो सकता है, उसका संबोधि प्राप्त कर लेना सुनिश्चित होता है?"

"आवुस आनन्द! चार धर्मों से युक्त होने से भगवान ने किसी को सोतापन्न बताया है। "आवुस! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति अचल श्रद्धा से युक्त होता है – **'ऐसे ही तो हैं वे भगवान! अर्हत, सम्यक-संबुद्ध, विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्वश्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह) भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), बुद्ध, भगवान।'**

"आवुस! आर्यश्रावक धर्म के प्रति अचल श्रद्धा से युक्त होता है - **'भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म सांदृष्टिक है, काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।'**

"आवुस! आर्यश्रावक संघ के प्रति अचल श्रद्धा से युक्त होता है – **'सुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, ऋजु मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, न्याय (सत्य) मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, यह जो (मार्ग-फल प्राप्त) आर्य-व्यक्तियों के चार जोड़े हैं, यानी आठ पुरुष पुद्गल हैं –यही भगवान का श्रावक-संघ है, (यही) आवाहन करने योग्य है, पाहुना (अतिथि) बनाने योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिबद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य-क्षेत्र है।'**

"आवुस! आर्यश्रावक आर्यों के प्रिय, अखंड, अछिद्र, निर्मल, शुद्ध, निर्बाध, विज्ञों द्वारा प्रशंसा-प्राप्त, मिश्रण-रहित, समाधि के लिए प्रेरक शीलों से युक्त होता है।

"इन चार धर्मों से युक्त आर्यश्रावक सोतापन्न हो जाता है। फिर वह धर्ममार्ग से च्युत नहीं हो सकता, और उसका संबोधि प्राप्त कर लेना सुनिश्चित होता है।"

–संयुत्तनिकाय (३.५.१०००), पठमसारिपुत्तसुत्त

पांच गुणों से युक्त आयुष्मान आनन्द

एक समय आयुष्मान आनन्द आयुष्मान सारिपुत्त के पास गये और उनका कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये। तब आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान सारिपुत्त से यह पूछा - "आवुस सारिपुत्त! कौन-से गुण होने से भिक्षु कुशल-धर्मों के प्रति क्षिप्र-ध्यान देने वाला कहा जाता है, सम्यक प्रकार ग्रहण करने वाला तथा ग्रहण की हुई बात को धारण कर रखने वाला होता है?"

"आयुष्मान आनन्द बहुश्रुत हैं। आयुष्मान आनन्द ही इस विषय में अपना मत प्रकट करें।"

"आवुस सारिपुत्त! सुनें अच्छी तरह मन में धारण करें। मैं कहता हूं।

"आवुस सारिपुत्त! यहां कोई भिक्षु अर्थकुशल होता है, धर्मकुशल होता है, व्यंजनकुशल होता है, निरुक्ति(=शब्दों की व्युत्पत्ति के बारे में) कुशल होता है, पूर्वापर(=क्रम)कुशल होता है। आवुस सारिपुत्त! इतने धर्मों के होने से कोई भिक्षु कुशल-धर्मों के प्रति क्षिप्र-ध्यान देने वाला कहा जाता है, सम्यक प्रकार ग्रहण करने वाला तथा ग्रहण की हुई बात को धारण कर रखने वाला होता है।"

"आश्चर्य है आवुस! अद्भुत है आवुस! आयुष्मान आनन्द का यह सुभाषित। हमारी यह मान्यता है कि आयुष्मान आनन्द इन पांच गुणों से युक्त हैं। आयुष्मान आनन्द अर्थकुशल हैं, धर्मकुशल हैं, व्यंजनकुशल हैं, निरुक्तिकुशल हैं, पूर्वापरकुशल हैं।"

–अङ्गुत्तरनिकाय (२.५.१६९), खिप्पनिसन्तिसुत्त

अनुरुद्ध की प्रशंसा

एक समय आयुष्मान अनुरुद्ध एवं आयुष्मान सारिपुत्त वेसाली के अम्बपालिवन में विहार करते थे। तब आयुष्मान सारिपुत्त सायंकाल ध्यानसाधना से उठकर आयुष्मान अनुरुद्ध के पास गये। तब आयुष्मान अनुरुद्ध से आयुष्मान सारिपुत्त ने कहा– "आयुष्मान अनुरुद्ध! आपकी इंद्रियां प्रसन्न और निर्मल हैं, मुखमंडल कांतिमान और परिशुद्ध है। आयुष्मान! इन दिनों आप किस प्रकार साधनारत हैं?

"आयुष्मान सारिपुत्त! इस समय मैं प्रायः चार स्मृतिप्रस्थानों में प्रतिष्ठित-चित्त हो विहरता हूं। किन चार?

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता हूं।

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर विहार करता हूं।

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहार करता हूं।

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, धर्म में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता हूं।

"आयुष्मान! जो कोई भी भिक्षु अर्हत, क्षीणास्रव, कृतकृत्य, निर्वाणप्राप्त, भवबंधनरहित और पूर्णरूपेण विमुक्त है, वह इन चार स्मृतिप्रस्थानों में सुप्रतिष्ठितचित्त होकर प्रायः विहार करता है।"

"आयुष्मान अनुरुद्ध! हमें लाभ है, सुलाभ है, जो हमने आयुष्मान अनुरुद्ध के मुख से ऐसा सुभाषित सुना।"

–संयुत्तनिकाय (३.५.९०७), अम्बपालिवनसुत्त

स्पर्शायतन-निरोध ही प्रपंच का अंत

एक अवसर पर आयुष्मान महाकोट्ठिक आयुष्मान सारिपुत्त के पास गये। उनसे कुशल-क्षेम और अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

तब आयुष्मान महाकोट्ठिक ने आयुष्मान सारिपुत्त से कहा – "आयुष्मान सारिपुत्त! क्या छः स्पर्शायतनों का निःशेष निरोध हो जाने पर अन्य कुछ शेष रहता है?

"आयुष्मान! ऐसा मत कहें।"

"तो आयुष्मान! क्या छः स्पर्शायतनों का निःशेष निरोध हो जाने पर कुछ शेष नहीं रहता है?"

"आयुष्मान! ऐसा भी मत कहें।"

"तो, क्या छः स्पर्शायतनों के निःशेष निरोध हो जाने पर कुछ शेष रहता है और कुछ शेष नहीं भी रहता है?"

"आयुष्मान! ऐसा मत कहें।"

"आयुष्मान! तो क्या छः स्पर्शायतनों के निःशेष निरोध हो जाने पर न तो कुछ शेष रहता है और न तो कुछ नहीं शेष रहता है?"

"आयुष्मान! ऐसा न कहें।"

आयुष्मान महाकोट्ठिक द्वारा आयुष्मान सारिपुत्त से स्पर्शायतनों के निरोध के बारे में प्रश्न पूछे जाने पर एक ही उत्तर मिला – 'आयुष्मान! ऐसा न कहें।' यह आयुष्मान महाकोट्ठिक को आश्चर्य हुआ। आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान महाकोट्ठिक की जिज्ञासा को शांत करते हुए कहा –

"आयुष्मान जहां तक छः स्पर्शायतनों की सीमा है, वहीं तक प्रपंच की सीमा है। जहां तक प्रपंच की सीमा है, वहीं तक स्पर्शायतनों की भी सीमा है। छः स्पर्शायतनों के निःशेष निरोध हो जाने से प्रपंचों का निरोध हो जाता है। तब, प्रपंचों का निरोध हो जाने से स्पर्शायतनों का शमन हो जाता है।"

–अङ्गुत्तरनिकाय (१.४.१७३), महाकोट्ठिकसुत्त

अव्याकृत

एक समय आयुष्मान महाकस्सप और आयुष्मान सारिपुत्त वाराणसी के पास इसिपतन मिगदाय में विहार करते थे। तव, आयुष्मान सारिपुत्त सायंकाल ध्यान से उठकर, आयुष्मान महाकस्सप के पास गये, और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये।

तव आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान महाकस्सप से पूछा – "आयुष्मान महाकस्सप! क्या जीव मरने के बाद रहता है?"

"आयुष्मान! भगवान ने ऐसा नहीं बताया है कि जीव मरने के बाद रहता है।"

"आयुष्मान! तो क्या जीव मरने के बाद नहीं रहता?"

"आयुष्मान! भगवान ने ऐसा भी नहीं बताया है कि जीव मरने के बाद नहीं रहता है।"

"आयुष्मान! भगवान ने इसे क्यों नहीं बताया है?"

"आयुष्मान! क्योंकि, यह न तो परमार्थ के लिए है, न ब्रह्मचर्य का साधक है, न निर्वेद के लिए है, न विराग के लिए है, न निरोध के लिए है, न शांति के लिए है, न ज्ञान के लिए है, न संबोधि के लिए है, और न निर्वाण के लिए है। इसलिए भगवान ने इसे नहीं बताया है।"

"आयुष्मान! तो भगवान ने क्या बताया है?"

"आयुष्मान! यह दुःख है – ऐसा भगवान ने बताया है। यह दुःख का समुदय है; यह दुःख का निरोध है तथा यह दुःखनिरोध का उपाय है। पंच उपादान-स्कंध ही दुःख है। तृष्णा दुःख का समुदय है। तृष्णा का सर्वथा निरोध, दुःख का निरोध है और आर्य-अष्टांगिक मार्ग ही दुःख-निरोध का उपाय है।"

"आयुष्मान! भगवान ने इसे क्यों बताया है?"

"आयुष्मान! क्योंकि यही परमार्थ का साधक है, ब्रह्मचर्य का साधक है, निर्वेद के लिए है, निर्वाण के लिए है। इसलिए भगवान ने इसे बताया है।"

–संयुत्तनिकाय (१.२.१५५), परम्मरणसुत्त

"भंते! यह आर्य अष्टांगिक मार्ग ही स्रोत (मुक्ति-स्रोत) है। जो है – सम्यकदृष्टि, सम्यकसंकल्प, सम्यकवाणी, सम्यककर्मांत, सम्यकआजीविका, सम्यकव्यायाम, सम्यकस्मृति और सम्यकसमाधि।"

"साधु सारिपुत्त! साधु! यह आर्य अष्टांगिक मार्ग ही स्रोत है। जो है – सम्यकदृष्टि, सम्यकसंकल्प, सम्यकवाणी, सम्यककर्मांत, सम्यकआजीविका, सम्यकव्यायाम, सम्यकस्मृति और सम्यकसमाधि।"

"सारिपुत्त! 'सोतापन्न, सोतापन्न' कहा जाता है, क्या होने से कोई सोतापन्न होता है?"

"भंते! जो आर्य अष्टांगिक मार्ग से युक्त हैं, इनका सेवन करते हैं, इनका चिंतन-मनन करते हैं, इनका अभ्यास करते हैं, इनमें अवगाहन करते हैं, जो आयुष्मान इस नाम के हैं, इस गोत्र के हैं, उन्हें सोतापन्न कहा जाता है।"

"साधु सारिपुत्त! साधु" ऐसा कहते हुए भगवान ने आयुष्मान सारिपुत्त के कथन का अनुमोदन किया।

–संयुत्तनिकाय (३.५.१००१), दुतियसारिपुत्तसुत्त

दुःख प्रतीत्य-समुत्पन्न है

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त प्रातःकाल सुआच्छादित हो, राजगह में भिक्षाटन के लिए निकले। तब उनके मन में ऐसा हुआ – 'भिक्षाटन के लिए अभी जल्दी है, क्यों न मैं अन्यतैर्थिक परिव्राजकों के आराम चलूं!' तब आयुष्मान सारिपुत्त अन्यतैर्थिक परिव्राजकों के पास पहुँचकर उनका कुशल-क्षेम पूछने के बाद एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे आयुष्मान सारिपुत्त से अन्यतैर्थिक परिव्राजक ने कहा – "आवुस सारिपुत्त!

१. कुछ श्रमण वा ब्राह्मण कर्मवादी हैं जो दुःख को अपना स्वयं किया हुआ बतलाते हैं।

२. कुछ श्रमण वा ब्राह्मण कर्मवादी दुःख को दूसरों का किया हुआ बतलाते हैं।

३. कुछ श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी दुःख को अपना स्वयं किया हुआ और दूसरों का किया हुआ भी बताते हैं।

४. कुछ श्रमण वा ब्राह्मण कर्मवादी दुःख को न तो अपना स्वयं किया हुआ, न ही दूसरों का किया हुआ बताते हैं बल्कि अकारण घटित हुआ बतलाते हैं। आयुष्मान सारिपुत्त! इस विषय में श्रमण गोतम का क्या कहना है? किस प्रकार हम श्रमण गोतम के सिद्धांत को यथार्थ रूप से बता सकते हैं, जिससे उनके सिद्धांत में उलट-फेर न होने पाये। हम जो कुछ भी कहें वह उनके धर्म के अनुकूल हो, जिसके कहने पर किसी सहधर्मी को दोष न लगे।"

आयुष्मान सारिपुत्त ने कहा – "आयुष्मानो! भगवान ने दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न (कारण से उत्पन्न) बतलाया है। किसके प्रत्यय (कारण) से? स्पर्श के प्रत्यय से। ऐसा कहकर आप भगवान के सिद्धांत को यथार्थ रूप में बता सकते हैं। इससे भगवान के सिद्धांत में कोई उलट-फेर नहीं होने पायगा। आप जो कुछ कहेंगे वह उनके धर्म के अनुकूल होगा। ऐसा कहने से किसी सहधर्मी को दोष भी नहीं लगेगा।

"आयुष्मानो! जो श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी दुःख को अपना स्वयं किया हुआ बताते हैं, वह भी स्पर्श के प्रत्यय से ही उत्पन्न होता है। जो श्रमण और ब्राह्मण दुःख को दूसरों का किया हुआ बताते हैं, या जो श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी दुःख को अपना स्वयं किया हुआ और दूसरों का भी किया हुआ बताते हैं, या जो श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी दुःख को न तो अपना किया हुआ, न ही दूसरों का किया हुआ बताते हैं बल्कि अकारण घटित हुआ बतलाते हैं वह भी स्पर्श के प्रत्यय से ही समुत्पन्न होता है। आयुष्मानो! स्पर्श के बिना कोई कुछ भी अनुभव कर ले, यह संभव ही नहीं है।"

आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान सारिपुत्त और अन्यतैर्थिक परिव्राजकों के बीच हुए कथा-संलाप को सुना। वे भिक्षाटन से लौटे और भोजन करके भगवान के पास गये। उनका अभिनंदन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान सारिपुत्त और अन्यतैर्थिक परिव्राजकों के बीच हुए कथा-संलाप को अक्षरशः भगवान को सुनाया।

भगवान ने आयुष्मान सारिपुत्त के कथन को एकदम सही बतलाया। उन्होंने कहा कि अविद्या के पूर्णतया निरोध से वह कर्म नहीं होता, जिससे सुख-दुःख उत्पन्न हों।

–संयुत्तनिकाय (१.२.२४), अञ्ञतित्थियसुत्त

गृहस्थ जीवन में लौटने के कारण

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। एक भिक्षु उनके पास आया और उनका अभिवादन करके एक ओर बैठ गया।

तब उस भिक्षु ने आयुष्मान सारिपुत्त से कहा – "आयुष्मान! मेरा एक शिष्य धर्म-शिक्षा छोड़ कर घर-गृहस्थी में लौट गया।"

आयुष्मान सारिपुत्त बोले – "आवुस! जो इंद्रियों में संयत न हो, भोजन में मात्रज्ञ न हो, जो जागरणशील न हो उसका यही हाल होता है। ऐसे व्यक्ति से जीवनपर्यंत पूर्ण, परिशुद्ध, ब्रह्मचर्यवास की आशा नहीं रखनी चाहिए।"

"आयुष्मान सारिपुत्त! कोई व्यक्ति इंद्रियों में संयत कैसे होता है?"

"आवुस! भिक्षु चक्षु से रूप देखकर ललचाता नहीं, उसमें रस नहीं लेता, यदि ऐसा करता है, तो उसमें लोभ, द्वेष और पापमय अकुशल धर्म प्रवेश कर जाते हैं। अतः उसके संवर के लिए प्रयत्नशील होता है। चक्षुइंद्रिय की रक्षा करता है। चक्षुइंद्रिय को संयत कर लेता है।

"इसी प्रकार श्रोत्र से शब्द सुनकर, जिह्वा से रस चखकर, घ्राण से गंध सूंघकर, त्वचा से स्पर्शकर तथा मन से धर्मों को जानकर, ललचाता नहीं, उसमें रस नहीं लेता। यदि ऐसा करता है, तो उसमें लोभ, द्वेष और पापमय अकुशल धर्म प्रवेश कर जाते हैं। अतः इनके संवर के लिए भिक्षु प्रयत्नशील रहता है। इंद्रिय विषयों में अरमण कर उन्हें संयत रखता है। इस प्रकार कोई भिक्षु इंद्रियों में संयत होता है।"

"आयुष्मान! कोई व्यक्ति भोजन में मात्रज्ञ कैसे होता है?"

"आयुष्मान! भिक्षु ज्ञानपूर्वक ठीक से आहार ग्रहण करता है न क्रीड़ा के लिए, न मद के लिए, न शरीर को मंडित करने के लिए और न विभूषित करने के लिए, बल्कि उतना ही आहार ग्रहण करता है जिससे इस काया की स्थिति बनी रहे, भूख के कारण जो दर्द हो उससे उपरत रहने के लिए तथा ब्रह्मचर्य का अभ्यास ठीक से हो सके इसके लिए बाकी पुरानी वेदनाओं को दूर करें, नयी वेदना उत्पन्न न हो और जीवन यात्रा निर्दोष तथा सुखपूर्वक हो। इस प्रकार भिक्षु भोजन में मात्रज्ञ होता है।"

"आयुष्मान सारिपुत्त! कोई व्यक्ति सदैव कैसे जागरणशील होता है?"

"आवुस! भिक्षु दिन में चंक्रमण कर, आसन लगाकर, चित्त को अकुशल धर्मों से शुद्ध रखता है। रात्रि के प्रथम याम में चंक्रमण कर और आसन लगा अकुशल धर्मों से चित्त को शुद्ध रखता है। रात्रि के मध्य याम में दाहिने करवट लेट, पैर पर पैर रख, सिंहशैय्या लगा, स्मृतिमान, संप्रज्ञ और उत्साहित रहता है। रात्रि के पिछले याम में चंक्रमण के बाद आसन लगाकर अकुशल धर्मों से चित्त को शुद्ध रखता है। आवुस! इस प्रकार कोई व्यक्ति सदैव जागरणशील रहता है।

"आवुस! ऐसा सीखना चाहिए – इंद्रियों में संयत रहूंगा, भोजन में मात्रज्ञ होऊंगा और सदैव जागरणशील रहूंगा।"

"आवुस! ऐसा ही सीखना चाहिए।"

–संयुत्तनिकाय (२.४.१२०), सारिपुत्तसद्धिविहारिकसुत्त

विरोधी भावों के शमन के उपाय

धर्मसेनापति सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित किया– "आयुष्मान भिक्षुओ!" "आयुष्मान!" कहकर उन भिक्षुओं ने आयुष्मान सारिपुत्त को प्रत्युत्तर दिया।

आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को यह कहा – "आयुष्मानो! (नीचे वर्णित पांच प्रकार के) व्यक्ति के प्रति मन में उत्पन्न विरोधभाव के उपशमन के लिए ये पांच आघातप्रतिविनय हैं। भिक्षु को चाहिए कि इन व्यक्तियों के प्रति विरोधभाव के उत्पन्न होने पर इनका सर्वथा उपशमन करे।"

(१) कायिक कर्म अशुद्ध, किंतु वाचिक कर्म शुद्ध वाला व्यक्ति।

(२) कायिक कर्म शुद्ध, किंतु वाचिक कर्म अशुद्ध वाला व्यक्ति।

(३) कायिक एवं वाचिक कर्म से अशुद्ध किंतु थोड़े समय के लिए चित्त की शुद्धि से युक्त एवं प्रीतियुक्त रहने वाला व्यक्ति।

(४) कायिक एवं वाचिक कर्मों से अशुद्ध व्यक्ति जो कि थोड़े समय के लिए भी न चित्त की शुद्धि की प्राप्ति करता है और न ही प्रीतियुक्त होता है।

(५) कायिक, वाचिक कर्मों से शुद्ध रहने वाला व्यक्ति जो बीच-बीच में चित्त की शुद्धि एवं प्रीतियुक्त होता है।

आयुष्मान सारिपुत्त ने विभिन्न दृष्टांतों सहित पांच प्रकार के व्यक्तियों के प्रति उत्पन्न विरोधभावों के उपशमन के उपाय बतलाये।

(१) **कायिक कर्म अशुद्ध, किंतु वाचिक कर्म शुद्ध वाले व्यक्ति के प्रति उत्पन्न विरोधभाव का शमन :** जैसे कोई पांशुकूलिक भिक्षु हो, जो चीथड़ों से बने वस्त्र ही पहनता हो, उसे गली में कोई चीथड़ा मिल जाये तो वह उसमें से का उपयोगी भाग फाड़कर, उसे लेकर आगे बढ़ जाता है। ठीक इसी प्रकार व्यक्ति के अशुद्ध कायिक कर्मों की उपेक्षा करते हुए एवं शुद्ध वाचिक कर्मों को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार के व्यक्ति के प्रति मन में उत्पन्न विरोधभाव का उपशमन करना चाहिए।

(२) **कायिक कर्म शुद्ध, किंतु वाणी के कर्म अशुद्ध वाले व्यक्ति के प्रति उत्पन्न विरोधभाव का शमन :** जैसे शुद्ध जलवाली पुष्करिणी (तालाब) शैवाल से ढकी हो, गर्मी की तपिश से व्याकुल, थका-मांदा प्यासा कोई व्यक्ति उस पुष्करिणी में उतरकर दोनों हाथ से शैवाल हटाकर अंजलिभर भर कर अपनी प्यास बुझाये। ठीक इसी प्रकार व्यक्ति के अशुद्ध वाणी के कर्मों की उपेक्षा करते हुए एवं शुद्ध कायिक कर्मों को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार के व्यक्ति के प्रति मन में उत्पन्न विरोधभाव का उपशमन करना चाहिए।

(३) **कायिक एवं वाचिक कर्म से अशुद्ध किंतु थोड़े समय के लिए चित्त की शुद्धि से युक्त एवं प्रीतियुक्त रहने वाले व्यक्ति के प्रति उत्पन्न विरोधभाव का उपशमन :** जैसे किसी गोष्पद (गाय के खुर से बने गड्ढे) में जल भरा हो। गर्मी की तपिश से व्याकुल, थका-मांदा प्यासा कोई व्यक्ति उस स्थान पर आये और ऐसा चिंतन करे – 'अगर गोष्पद में भरे जल को मैं अंजलि या पात्र में भरकर पीऊं तो यह संभव है कि जल मटमैला हो जाय। उचित होगा कि इस जल को मैं दोनों घुटनों तथा दोनों हाथों के बल झुककर गाय-बैल की भांति पीकर आगे बढ़ जाऊं।' वह ऐसा करता हुआ आगे बढ़ जाता है। ठीक इसी प्रकार व्यक्ति के कायिक एवं वाचिक अशुद्ध कर्मों की तरफ ध्यान न देते हुए बीच-बीच में प्राप्त कर्मों की शुद्धि एवं चित्त में जागी प्रीति की ओर ध्यान देते हुए इस प्रकार के व्यक्ति के प्रति चित्त में उत्पन्न विरोधभाव का उपशमन करना चाहिए।

(४) कायिक एवं वाचिक कर्मों से अशुद्ध व्यक्ति जो कि थोड़े समय के लिए भी न चित्त की शुद्धि को प्राप्त करता है – और न ही प्रीतियुक्त होता है ऐसे व्यक्ति के प्रति उत्पन्न विरोधभाव का उपशमन : जैसे कोई रोग से पीड़ित, दुःखी, खिन्न मन वाला व्यक्ति किसी राह में जा रहा हो। उसके आगे-पीछे के गांव भी बहुत दूर हों। उसको न तो रोगानुकूल पथ्य, न ही औषध, और न ही कोई योग्य परिचारक और न ही कोई ऐसा व्यक्ति जो उसको किसी गांव के समीप पहुँचा दे। उस स्थिति में उसे देखकर किसी व्यक्ति के मन में करुणा जागे – 'अरे! इस व्यक्ति को रोग के निदान हेतु अनुकूल पथ्य, अनुकूल औषध, योग्य परिचारक एवं कोई ऐसा पुरुष मिले जो इसकी मदद कर सके जिससे कि यह एकांत में मृत्यु को प्राप्त न हो जाय।' ऐसे व्यक्ति के प्रति दया, करुणा एवं अनुकंपा का भाव रखना चाहिए जिससे कि वह कायिक, वाचिक, मानसिक दुश्चरित्रता को छोड़कर सुचरित्रता का जीवन व्यतीत कर सके। ताकि ऐसा व्यक्ति काया के छूटने पर, मरने के उपरांत नरक में पड़कर दुर्गति प्राप्त न करे। इस प्रकार उस व्यक्ति के प्रति चित्त में उत्पन्न विरोधभाव का उपशमन करना चाहिए।

(५) कायिक, वाचिक कर्मों से शुद्ध रहने वाला व्यक्ति जो बीच-बीच में चित्त की शुद्धि एवं प्रीति प्राप्त करता है – ऐसे व्यक्ति के प्रति उत्पन्न विरोधभाव का उपशमन : जैसे कोई स्वच्छ, शीतल, अच्छे घाटों वाली, रमणीय तथा नाना प्रकार के वृक्षों से आच्छादित पुष्करिणी हो। गर्मी की तपिश से व्याकुल, थका-मांदा प्यासा कोई व्यक्ति उस पुष्करिणी में उतरकर स्नान कर, जल पीकर बाहर आकर वहीं वृक्ष की छाया में बैठ जाय या लेट जाय। इसी प्रकार कायिक, वाचिक कर्मों से शुद्ध रहने वाला व्यक्ति जो कि बीच-बीच में चित्त की शुद्धि एवं प्रीति प्राप्त करता है, उसके शुद्ध कायिक, वाचिक, मानसिक कर्मों की तरफ ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार ऐसे व्यक्ति के प्रति चित्त में उत्पन्न विरोधभाव का उपशमन करना चाहिए।

आयुष्मानो! ये पांच विरोधीभाव के उपशमन हैं। भिक्षुओं को चाहिए कि वे इन पांचों विरोधीभावों के उत्पन्न होने पर उनका सर्वथा उपशमन करें।

–अङ्गुत्तरनिकाय (२.५.१६२), दुतियआघातपटिविनयसुत्त

'सम्यकदृष्टि' की व्याख्या

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे।

वहां आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित किया – "आयुष्मान भिक्षुओ!" उन भिक्षुओं ने प्रत्युत्तर दिया – "आयुष्मान!"

आयुष्मान सारिपुत्त ने कहा– "आयुष्मानो! जो यह 'सम्यकदृष्टि', 'सम्यकदृष्टि' कहा जाता है, तो कैसे कोई आर्यश्रावक सम्यकदृष्टिक होता है? वह कैसे सीधी दृष्टि वाला, धर्म में प्रगाढ़ श्रद्धा रखने वाला तथा सद्धर्म को प्राप्त करने वाला होता है?"

भिक्षुओं ने कहा– "आयुष्मान! आपके इस कथन का अर्थ जानने-समझने के लिए हम दूर-दूर से आपके पास आये हैं। अच्छा हो कि आयुष्मान! आप ही इस कथन का अर्थ स्पष्ट करें। आयुष्मान के मुख से सुनकर हम सभी जानेंगे और धारण करेंगे।"

"तो आयुष्मानो! अच्छी तरह मन लगाकर सुनो, मैं कहता हूं।"

"अच्छा, आयुष्मान!" भिक्षुओं ने प्रत्युत्तर दिया।

"जब आर्यश्रावक अकुशल (बुराई) को जानता है, अकुशल-मूल को जानता है, कुशल (भलाई) को जानता है, कुशल-मूल को जानता है – इतने से वह सम्यकदृष्टिक होता है। उसकी दृष्टि सीधी होती है, वह धर्म में प्रगाढ़ श्रद्धा वाला होता है और सद्धर्म को प्राप्त होता है।

"अकुशल होते हैं – प्राणियों की हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ बोलना, चुगली करना, कठोर वचन बोलना, व्यर्थ प्रलाप करना, लोलुपता, प्रतिहिंसा और मिथ्यादृष्टि (गलत धारणा)। अकुशल-मूल हैं – लोभ, दोष तथा मोह।

"कुशल होते हैं – प्राणियों की हिंसा न करना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, झूठ न बोलना, चुगली न करना, कठोर वचन न बोलना, व्यर्थ प्रलाप न करना, लोलुपता का अभाव, प्रतिहिंसा का अभाव और सम्यकदृष्टि (सही धारणा)। कुशल-मूल हैं – अ-लोभ, अ-द्वेष तथा अ-मोह।

"जब आर्यश्रावक इस प्रकार अकुशल, अकुशल-मूल, कुशल तथा कुशल-मूल को जानता है तब वह रागानुशय का प्रहाण कर, प्रतिघ

(प्रतिहिंसा)-अनुशय को दूर कर, 'अस्मि' (मैं हूं) - इस दृष्टिमान-अनुशय का समुच्छेद कर, अविद्या को नष्ट कर, विद्या को उत्पन्न कर, इसी जीवन में दुःखों का अंत करने वाला होता है - इतने से भी आर्यश्रावक सम्यकदृष्टिक होता है। उसकी दृष्टि सीधी होती है, वह प्रगाढ़ श्रद्धा वाला होता है और सद्धर्म को प्राप्त करता है।"

तदनंतर आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं के लिए अन्य धर्म-पर्याय भी प्रस्तुत किये जिनसे आर्यश्रावक सम्यकदृष्टिक होता है। ये पर्याय हैं -

- जब वह प्रज्ञापूर्वक आहार, आहार का समुदय, आहार का निरोध, तथा आहार का निरोध कराने वाले मार्ग (उपाय) को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक दुःख, दुःख का समुदय, दुःख का निरोध तथा दुःख का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक जरा-मरण, जरा-मरण का समुदय, जरा-मरण का निरोध तथा जरा-मरण का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक जाति (जन्म), जाति का समुदय, जाति का निरोध तथा जाति का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक भव, भव का समुदय, भव का निरोध तथा भव का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक उपादान, उपादान का समुदय, उपादान का निरोध तथा उपादान का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक तृष्णा, तृष्णा का समुदय, तृष्णा का निरोध तथा तृष्णा का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक वेदना, वेदना का समुदय, वेदना का निरोध तथा वेदना का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक स्पर्श, स्पर्श का समुदय, स्पर्श का निरोध तथा स्पर्श का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक छः आयतनों, इनका समुदय, इनका निरोध तथा इनका निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक नामरूप, नामरूप का समुदय, नामरूप का निरोध तथा नामरूप का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक विज्ञान, विज्ञान का समुदय, विज्ञान का निरोध तथा विज्ञान का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक संस्कार, संस्कार का समुदय, संस्कार का निरोध तथा संस्कार का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक अविद्या, अविद्या का समुदय, अविद्या का निरोध तथा अविद्या का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

- जब वह प्रज्ञापूर्वक आस्रव, आस्रव का समुदय, आस्रव का निरोध तथा आस्रव का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है। और यह जो सारे मार्ग बतलाये गये हैं, यह 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' ही है, अर्थात सम्यकदृष्टि, सम्यकसंकल्प, सम्यकवाणी, सम्यककर्मांत, सम्यकआजीविका, सम्यकव्यायाम, सम्यकस्मृति, सम्यकसमाधि।

—मज्झिमनिकाय (१.१.८९-१०४), सम्मादिट्ठिसुत्त

महाश्रावकों के साथ संवाद

अनुरुद्ध की कठिनाई का निवारण

एक बार आयुष्मान अनुरुद्ध आयुष्मान सारिपुत्त के पास पहुँचे। पास जाकर उनके साथ कुशलक्षेम की बातचीत की। कुशलक्षेम की बातचीत समाप्त कर आयुष्मान अनुरुद्ध एक ओर बैठ गये। तब आयुष्मान अनुरुद्ध ने आयुष्मान सारिपुत्त को कहा –

"आयुष्मान सारिपुत्त! मैं अलौकिक, विशुद्ध, दिव्य चक्षु से सहस्रों लोकों को देखता हूं। मेरा आलस्य-रहित प्रयत्न आरंभ है। उपस्थित-स्मृति मूढ़ता-विहीन है। शांत-शरीर उत्तेजना-रहित है। समाहित-चित्त एकाग्र है। लेकिन तब भी मेरा चित्त उपादान-रहित होकर आस्रवों से विमुक्त नहीं होता।"

"आयुष्मान अनुरुद्ध! आपके मन में जो यह होता है कि मैं अलौकिक, विशुद्ध, दिव्य चक्षु से सहस्रों लोकों को देखता हूं – यह आपका मान (अहंकार) है। आयुष्मान अनुरुद्ध! आपके मन में जो यह होता है कि मेरा आलस्य-रहित प्रयत्न आरंभ है, उपस्थित-स्मृति मूढ़ता-विहीन है, शांत-शरीर उत्तेजना-रहित है, समाहित-चित्त एकाग्र है – यह आपका उद्धतपन है। आयुष्मान अनुरुद्ध! आप के मन में जो यह होता है कि मेरा चित्त उपादान-रहित होकर आस्रवों से विमुक्त नहीं होता – यह आपका कौकृत्य (पश्चात्ताप) है। आयुष्मान अनुरुद्ध! अच्छा होगा यदि आप इन तीनों बातों को छोड़कर, इन तीनों धर्मों को मन से निकालकर चित्त को अमृत-धातु (=निर्वाण) की ओर केंद्रित करें।"

तब आगे चलकर आयुष्मान अनुरुद्ध ने इन तीनों बातों को छोड़कर, इन तीनों धर्मों को मन से निकालकर, चित्त को अमृत-धातु की ओर केंद्रित किया। तब (उन धर्मों से) हट जाने से, अप्रमादी होकर प्रयत्न करने से, बलवान होकर विहार करने से आयुष्मान अनुरुद्ध ने अचिरकाल में ही,

जिसके लिए कुलपुत्र घर का त्यागकर बेघर हो जाते हैं, उस ब्रह्मचर्य-मय सर्वश्रेष्ठ (पद) को इसी जीवन में, स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार किया। उन्होंने जान लिया कि जन्म (का कारण) क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया, करणीय समाप्त हो गया और यहां के लिए (अर्थात फिर जन्म लेने के लिए) कुछ शेष नहीं रहा। आयुष्मान अनुरुद्ध अर्हंतों में से एक हुए।

–अङ्गुत्तरनिकाय (१.३.१३१), दुतियअनुरुद्धसुत्त

बोध्यंगों की सिध्दि का ज्ञान

एक समय आयुष्मान उपवान व आयुष्मान सारिपुत्त कोसाम्बी के घोसिताराम में विहार करते थे। तब आयुष्मान सारिपुत्त सायंकाल ध्यान से उठ आयुष्मान उपवान के पास गये और कुशलक्षेम की बातचीत की। कुशलक्षेम की बातचीत समाप्त कर आयुष्मान सारिपुत्त एक ओर बैठ गये। तब आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान उपवान को यह कहा -

"आयुष्मान उपवान! क्या भिक्षु जानता है कि मेरे अंदर भीतर-ही-भीतर अच्छी तरह चिंतन-मनन करने से सातों बोध्यंग सिद्ध होकर सुखपूर्वक विहार करने योग्य हो गये हैं?"

"हां आयुष्मान! भिक्षु यह जानता है कि मेरे अंदर भीतर-ही-भीतर अच्छी तरह चिंतन-मनन करने से सातों बोध्यंग सिद्ध होकर सुखपूर्वक विहार करने योग्य हो गये हैं।

"भिक्षु यह जानता है, कि मेरे अंदर स्मृति संबोध्यंग सिद्ध होकर सुखपूर्वक विहार करने योग्य हो गया है। वह जानता है, कि मेरा आलस्य समूल नष्ट हो गया है। औद्धत्य-कौकृत्य बिल्कुल समाप्त हो गये हैं। किसी प्रकार का संदेह नहीं रहा। मैं पूरा प्रयत्नशील हूं। मन परमार्थ में लीन है और चित्त विकारों से पूर्णतया विमुक्त हो गया है।"

आयुष्मान उपवान ने शेष छह बोध्यंगों– धर्म-विचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि, उपेक्षा के संबंध में भी इसी प्रकार बतलाया।

–संयुत्तनिकाय (३.५.१८९), उपवानसुत्त

सोतापन्न चार गुणों से युक्त

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान आनन्द सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। तब सायंकाल आयुष्मान आनन्द आयुष्मान सारिपुत्त के पास आये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान सारिपुत्त से पूछा – "आवुस सारिपुत्त! कितने धर्मों से युक्त होने से भगवान ने किसी को सोतापन्न बतलाया है, जो मार्ग से च्युत नहीं हो सकता है, उसका संबोधि प्राप्त कर लेना सुनिश्चित होता है?"

"आवुस आनन्द! चार धर्मों से युक्त होने से भगवान ने किसी को सोतापन्न बताया है। "आवुस! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति अचल श्रद्धा से युक्त होता है – **'ऐसे ही तो हैं वे भगवान! अर्हत, सम्यक-संबुद्ध, विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्वश्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह) भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), बुद्ध, भगवान।'**

"आवुस! आर्यश्रावक धर्म के प्रति अचल श्रद्धा से युक्त होता है - **'भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म सांदृष्टिक है, काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।'**

"आवुस! आर्यश्रावक संघ के प्रति अचल श्रद्धा से युक्त होता है – **'सुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, ऋजु मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, न्याय (सत्य) मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, यह जो (मार्ग-फल प्राप्त) आर्य-व्यक्तियों के चार जोड़े हैं, यानी आठ पुरुष पुद्गल हैं–यही भगवान का श्रावक-संघ है, (यही) आवाहन करने योग्य है, पाहुना (अतिथि) बनाने योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिबद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य-क्षेत्र है।'**

"आवुस! आर्यश्रावक आर्यों के प्रिय, अखंड, अछिद्र, निर्मल, शुद्ध, निर्बाध, विज्ञों द्वारा प्रशंसा-प्राप्त, मिश्रण-रहित, समाधि के लिए प्रेरक शीलों से युक्त होता है।

"इन चार धर्मों से युक्त आर्यश्रावक सोतापन्न हो जाता है। फिर वह धर्ममार्ग से च्युत नहीं हो सकता, और उसका संबोधि प्राप्त कर लेना सुनिश्चित होता है।"

–संयुत्तनिकाय (३.५.१०००), पठमसारिपुत्तसुत्त

पांच गुणों से युक्त आयुष्मान आनन्द

एक समय आयुष्मान आनन्द आयुष्मान सारिपुत्त के पास गये और उनका कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये। तब आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान सारिपुत्त से यह पूछा - "आवुस सारिपुत्त! कौन-से गुण होने से भिक्षु कुशल-धर्मों के प्रति क्षिप्र-ध्यान देने वाला कहा जाता है, सम्यक प्रकार ग्रहण करने वाला तथा ग्रहण की हुई बात को धारण कर रखने वाला होता है?"

"आयुष्मान आनन्द बहुश्रुत हैं। आयुष्मान आनन्द ही इस विषय में अपना मत प्रकट करें।"

"आवुस सारिपुत्त! सुनें अच्छी तरह मन में धारण करें। मैं कहता हूं।

"आवुस सारिपुत्त! यहां कोई भिक्षु अर्थकुशल होता है, धर्मकुशल होता है, व्यंजनकुशल होता है, निरुक्ति(=शब्दों की व्युत्पत्ति के बारे में) कुशल होता है, पूर्वापर(=क्रम)कुशल होता है। आवुस सारिपुत्त! इतने धर्मों के होने से कोई भिक्षु कुशल-धर्मों के प्रति क्षिप्र-ध्यान देने वाला कहा जाता है, सम्यक प्रकार ग्रहण करने वाला तथा ग्रहण की हुई बात को धारण कर रखने वाला होता है।"

"आश्चर्य है आवुस! अद्भुत है आवुस! आयुष्मान आनन्द का यह सुभाषित। हमारी यह मान्यता है कि आयुष्मान आनन्द इन पांच गुणों से युक्त हैं। आयुष्मान आनन्द अर्थकुशल हैं, धर्मकुशल हैं, व्यंजनकुशल हैं, निरुक्तिकुशल हैं, पूर्वापरकुशल हैं।"

–अङ्गुत्तरनिकाय (२.५.१६९), खिप्पनिसन्तिसुत्त

अनुरुद्ध की प्रशंसा

एक समय आयुष्मान अनुरुद्ध एवं आयुष्मान सारिपुत्त वेसाली के अम्बपालिवन में विहार करते थे। तब आयुष्मान सारिपुत्त सायंकाल ध्यानसाधना से उठकर आयुष्मान अनुरुद्ध के पास गये। तब आयुष्मान अनुरुद्ध से आयुष्मान सारिपुत्त ने कहा– "आयुष्मान अनुरुद्ध! आपकी इंद्रियां प्रसन्न और निर्मल हैं, मुखमंडल कांतिमान और परिशुद्ध है। आयुष्मान! इन दिनों आप किस प्रकार साधनारत हैं?

"आयुष्मान सारिपुत्त! इस समय मैं प्रायः चार स्मृतिप्रस्थानों में प्रतिष्ठित-चित्त हो विहरता हूं। किन चार?

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता हूं।

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर विहार करता हूं।

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहार करता हूं।

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, धर्म में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता हूं।

"आयुष्मान! जो कोई भी भिक्षु अर्हत, क्षीणास्रव, कृतकृत्य, निर्वाणप्राप्त, भवबंधनरहित और पूर्णरूपेण विमुक्त है, वह इन चार स्मृतिप्रस्थानों में सुप्रतिष्ठितचित्त होकर प्रायः विहार करता है।"

"आयुष्मान अनुरुद्ध! हमें लाभ है, सुलाभ है, जो हमने आयुष्मान अनुरुद्ध के मुख से ऐसा सुभाषित सुना।"

–संयुत्तनिकाय (३.५.९०७), अम्बपालिवनसुत्त

स्पर्शायतन-निरोध ही प्रपंच का अंत

एक अवसर पर आयुष्मान महाकोट्ठिक आयुष्मान सारिपुत्त के पास गये। उनसे कुशल-क्षेम और अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

तब आयुष्मान महाकोट्ठिक ने आयुष्मान सारिपुत्त से कहा – "आयुष्मान सारिपुत्त! क्या छः स्पर्शायतनों का निःशेष निरोध हो जाने पर अन्य कुछ शेष रहता है?

"आयुष्मान! ऐसा मत कहें।"

"तो आयुष्मान! क्या छः स्पर्शायतनों का निःशेष निरोध हो जाने पर कुछ शेष नहीं रहता है?"

"आयुष्मान! ऐसा भी मत कहें।"

"तो, क्या छः स्पर्शायतनों के निःशेष निरोध हो जाने पर कुछ शेष रहता है और कुछ शेष नहीं भी रहता है?"

"आयुष्मान! ऐसा मत कहें।"

"आयुष्मान! तो क्या छः स्पर्शायतनों के निःशेष निरोध हो जाने पर न तो कुछ शेष रहता है और न तो कुछ नहीं शेष रहता है?"

"आयुष्मान! ऐसा न कहें।"

आयुष्मान महाकोट्ठिक द्वारा आयुष्मान सारिपुत्त से स्पर्शायतनों के निरोध के बारे में प्रश्न पूछे जाने पर एक ही उत्तर मिला – 'आयुष्मान! ऐसा न कहें।' यह आयुष्मान महाकोट्ठिक को आश्चर्य हुआ। आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान महाकोट्ठिक की जिज्ञासा को शांत करते हुए कहा –

"आयुष्मान जहां तक छः स्पर्शायतनों की सीमा है, वहीं तक प्रपंच की सीमा है। जहां तक प्रपंच की सीमा है, वहीं तक स्पर्शायतनों की भी सीमा है। छः स्पर्शायतनों के निःशेष निरोध हो जाने से प्रपंचों का निरोध हो जाता है। तब, प्रपंचों का निरोध हो जाने से स्पर्शायतनों का शमन हो जाता है।"

–अङ्गुत्तरनिकाय (१.४.१७३), महाकोट्ठिकसुत्त

अव्याकृत

एक समय आयुष्मान महाकस्सप और आयुष्मान सारिपुत्त वाराणसी के पास इसिपतन मिगदाय में विहार करते थे। तब, आयुष्मान सारिपुत्त सायंकाल ध्यान से उठकर, आयुष्मान महाकस्सप के पास गये, और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये।

तब आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान महाकस्सप से पूछा – "आयुष्मान महाकस्सप! क्या जीव मरने के बाद रहता है?"

"आयुष्मान! भगवान ने ऐसा नहीं बताया है कि जीव मरने के बाद रहता है।"

"आयुष्मान! तो क्या जीव मरने के बाद नहीं रहता?"

"आयुष्मान! भगवान ने ऐसा भी नहीं बताया है कि जीव मरने के बाद नहीं रहता है।"

"आयुष्मान! भगवान ने इसे क्यों नहीं बताया है?"

"आयुष्मान! क्योंकि, यह न तो परमार्थ के लिए है, न ब्रह्मचर्य का साधक है, न निर्वेद के लिए है, न विराग के लिए है, न निरोध के लिए है, न शांति के लिए है, न ज्ञान के लिए है, न संबोधि के लिए है, और न निर्वाण के लिए है। इसलिए भगवान ने इसे नहीं बताया है।"

"आयुष्मान! तो भगवान ने क्या बताया है?"

"आयुष्मान! यह दुःख है – ऐसा भगवान ने बताया है। यह दुःख का समुदय है; यह दुःख का निरोध है तथा यह दुःखनिरोध का उपाय है। पंच उपादान-स्कंध ही दुःख है। तृष्णा दुःख का समुदय है। तृष्णा का सर्वथा निरोध, दुःख का निरोध है और आर्य-अष्टांगिक मार्ग ही दुःख-निरोध का उपाय है।"

"आयुष्मान! भगवान ने इसे क्यों बताया है?"

"आयुष्मान! क्योंकि यही परमार्थ का साधक है, ब्रह्मचर्य का साधक है, निर्वेद के लिए है, निर्वाण के लिए है। इसलिए भगवान ने इसे बताया है।"

–संयुत्तनिकाय (१.२.१५५), परम्मरणसुत्त

अनातापी और अनोत्तापी

एक समय आयुष्मान महाकस्सप और आयुष्मान सारिपुत्त वाराणसी के पास इसिपतन मिगदाय में विहार करते थे। आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान महाकस्सप से पूछा – "आयुष्मान! क्या यह सही है कि अनातापी (जो अपने क्लेशों को नहीं तपाता) और अनोत्तापी (जो क्लेशों के उठने पर सावधान नहीं रहता) निर्वाण को नहीं पा सकता? केवल आतापी एवं ओत्तापी ही परमपद को प्राप्त कर सकता है?"

"हां, आयुष्मान! यह सही है। अनुत्पन्न पाप एवं अकुशल धर्म उत्पन्न होकर, उत्पन्न पाप एवं अकुशल धर्म प्रहीण नहीं होने से, अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न नहीं होने से तथा उत्पन्न कुशल धर्म नष्ट होने से, अनिष्ट करते हैं। इसलिए साधक को सदा आतापी (अपने क्लेशों को तपाते रहने वाला) तथा ओत्तापी (क्लेशों के उत्पन्न होने पर सजग रहने वाला) होना चाहिए। तभी वह निर्वाण तक पहुँच सकता है।"

–संयुत्तनिकाय (१.२.१४५), अनोत्तप्पीसुत्त

धम्म-दान

लकुण्डक को बहुविध धर्म समझाया

एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान लकुण्डकभद्दिय को अनेक प्रकार से धर्मकथा द्वारा संहर्षित और समुत्तेजित किया।

आयुष्मान सारिपुत्त द्वारा आयुष्मान लकुण्डकभद्दिय को अनेक प्रकार से धर्मकथा द्वारा संहर्षित और समुत्तेजित किये जाने से आयुष्मान लकुण्डकभद्दिय का चित्त उपादानरहित, आस्रवों से विमुक्त हो गया।

जब भगवान ने आयुष्मान सारिपुत्त द्वारा आयुष्मान लकुण्डकभद्दिय को धर्मकथा द्वारा संहर्षित और समुत्तेजित किये जाने से उनके चित्त को उपादानरहित, आस्रवों से विमुक्त होना जान लिया तब भगवान के मुख से उदान के ये शब्द निकल पड़े :

"उद्धं अधो सब्बधि विप्पमुत्तो, अयंहमस्मीति अनानुपस्सी।
एवं विमुत्तो उदतारि ओघं, अतिण्णपुब्बं अपुनब्भवाया"ति॥

['जिस किसी के अधोभागीय और ऊर्ध्वभागीय संयोजन प्रहीण हो चुके हैं, अपनी काया के प्रति जिसका 'मैं', 'मेरे' का भाव नष्ट हो चुका है। इस प्रकार वह विकारमुक्त हो भवसागर को पार कर जाता है। पुनर्जन्म के लिए उसके पास कुछ शेष नहीं रह जाता है।']

"अच्छेच्छि वट्टं ब्यगा निरासं, विसुक्खा सरिता न सन्दति।
छिन्नं वट्टं न वत्तति, एसेवन्तो दुक्खस्सा"ति।

['जिस किसी ने अपने भवचक्र को काट डाला, उसकी आशाएं समाप्त हो गयीं, उसकी कर्म-नदियां सूख गयी हैं, अब वे पुनः प्रवाहित नहीं होंगी।

जिस प्रकार लता के कट जाने पर वह नहीं फैलती, उसी प्रकार (भद्दिय) के दुःखों का अंत हो गया है।']

–उदानपालि (६१, ६२), पठमलकुण्डकभद्दियसुत्त, दुतियलकुण्डकभद्दियसुत्त

प्रमादी धनञ्जानि को सुधारा

ब्राह्मणी धनञ्जानि (धनंजानि) भगवान बुद्ध के प्रति अत्यंत श्रद्धालु थी। शील, समाधि, प्रज्ञा को धारण करने वाली थी। उसका कुछ-कुछ प्रभाव उसके पति तथा परिवार पर भी पड़ा। परंतु जब उसका शरीर शांत हुआ तब ब्राह्मण धनञ्जानि ने दूसरा विवाह कर लिया। यह नवोढ़ा पत्नी धर्म से सर्वथा दूर थी। अब धनञ्जानि पर इसका प्रभाव अधिक पड़ने लगा। उसका शुद्ध होता हुआ जीवन फिर दूषित होने लगा। वह भदंत सारिपुत्त का पूर्व शिष्य था। अतः वे उसका विशेष ख्याल रखते थे। एक बार भदंत सारिपुत्त ने किसी भिक्षु से पूछा –

"क्या धनञ्जानि अप्रमाद का जीवन जी रहा है?"

कुतो, पनावुसो, धनञ्जानिस्स ब्राह्मणस्स अप्पमादो?

- आवुस, कहां है ब्राह्मण धनञ्जानि का अप्रमाद?

धनञ्जानि, आवुसो, ब्राह्मणो राजानं निस्साय ब्राह्मणगहपतिके विलुम्पति।

- हे आवुस, अब तो धनञ्जानि ब्राह्मण राजा का सहारा लेकर ब्राह्मण गृहस्थों को ठगता है, लूटता है और

ब्राह्मणगहपतिके निस्साय राजानं विलुम्पति।

–मज्झिमनिकाय २.४४५, धनञ्जानिसुत्त

- गृहस्थ ब्राह्मणों का सहारा लेकर राजा को ठगता है, लूटता है। यानी फिर उसी ठगविद्या में पड़ गया है और अपना तथा औरों का अनर्थ कर रहा है। यह सुन कर महाकारुणिक भगवान के परम शिष्य करुणावंत सारिपुत्त राजगह आये और ब्राह्मण धनञ्जानि के यहां गये।

अवसर पाकर भदंत सारिपुत्त ने ब्राह्मण धनञ्जानि को धर्मदेशना देते हुए समझाया कि तुम्हारा दुष्कर्म तुम्हारे लिए ही हानिकारक होगा। दुष्फल आने पर अन्य कोई हाथ बटाने नहीं आयगा।

कुछ समय के बाद ब्राह्मण धनञ्जानि बहुत बीमार पड़ा। मरणांतक पीड़ा से पीड़ित हुआ। उसने भगवान को अपना नमन - अभिवादन कहलवाया और भदंत सारिपुत्त को बुलवा भेजा। भगवान की आज्ञा लेकर सारिपुत्त ब्राह्मण धनञ्जानि के यहां गये। सारिपुत्त ने मरणासन्न अवस्था में पड़े ब्राह्मण धनञ्जानि की धर्म-स्मृति जगायी। उसे ब्रह्मविहार की साधना-भावना का अभ्यास कराया। इसका अभ्यास करते-करते उसकी शरीर-च्युति हुई और वह ब्रह्मलोक में जन्मा। उसका यह लोक भी सुधरा, परलोक भी सुधरा।

यों भगवान बुद्ध और उनके शिष्य बिगड़े हुए लोगों को सुधारने का ही काम करते थे। इसीलिए लोग उनकी ओर खिंचे चले आते थे।

भोजन-दान फलीभूत हुआ

एक बार भगवान बुद्ध के वर्षावास के बाद चारिका से लौटने पर सावत्थीवासियों ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ का अतिथि सत्कार करने हेतु भोजन-दान की व्यवस्था की। विहार में एक धर्मघोषक भिक्षु को नियुक्त किया गया, जिसके पास आकर लोग जितने भिक्षु मांगते थे, वह उन्हें उतने ही चुन कर दे दिया करता।

एक दिन एक निर्धन वृद्धा ने एक ही व्यक्ति के लिए भोजन तैयार किया और धर्मघोषक के पास जाकर एक भिक्षु को अपने यहां भेजने के लिए निवेदन किया। लगभग सभी भिक्षु भिक्षा-प्राप्ति के लिए जा चुके थे।

धर्मघोषक ने बताया – "सभी भिक्षु भिक्षाटन हेतु जा चुके हैं। केवल महास्थविर सारिपुत्त विहार में हैं। तू उन्हें दान दे सकती है।"

प्रसन्नचित्त वृद्धा ने जेतवन के द्वार पर खड़ी हो, स्थविर के आने के समय उन्हें प्रणाम कर, हाथ से पात्र ले, घर जाकर बैठाया। 'एक निर्धन वृद्धा ने धर्मसेनापति को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित किया है' यह बात बहुत से श्रद्धालु परिवारों को ज्ञात हुई तो उन्होंने वृद्धा के यहां अच्छे-अच्छे वस्त्र, स्वादिष्ट भोज्य-पदार्थ तथा काफी मात्रा में धन इत्यादि भिजवाया जिससे कि महास्थविर सारिपुत्त के आतिथ्य-सत्कार में वृद्धा द्वारा कोई कमी न रह जाय। कोशलनरेश पसेनदि ने वस्त्र, एक थैली में हजार कार्षापण और भोजन-भरे बर्तन भेज दिये और कहला भेजा कि हमारे आर्य को भोजन परोसते समय यह वस्त्र पहने और यह कार्षापण खर्च करे। इसी प्रकार श्रेष्ठी

अनाथपिण्डिक ने, माता विसाखा ने तथा अन्य परिवारों ने भी नाना-प्रकार की वस्तुएं तथा धन वृद्धा के घर भिजवाया। इस प्रकार एक ही दिन में उस वृद्धा को एक लाख कार्षापण मिले। स्थविर उसका दिया हुआ यवागु, खज्जक तथा भात खाकर भोजन-दान का अनुमोदन कर उसे सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित कर विहार लौट आये।

धर्म-सभा में भिक्षुओं ने महास्थविर की प्रशंसा करनी आरंभ की – "आयुष्मानो! धर्मसेनापति ने वृद्धा को दरिद्रता से मुक्ति दिलायी। उन्होंने उसका दिया हुआ भोजन प्रसन्नचित्त से खाया।"

शास्ता ने आकर पूछा – "भिक्षुओ! क्या बातचीत कर रहे हो?" 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा – "भिक्षुओ! न केवल अभी सारिपुत्त इस वृद्धा के सहायक हुए हैं बल्कि पहले भी इसके सहायक हुए हैं, न केवल अभी उसका दिया हुआ भोजन प्रसन्न-चित्त से खाया है बल्कि पहले भी खाया है।"

अनाथ मछुआ-पुत्र को धर्मदान

कोसल राष्ट्र के एक बड़े-से गांव में मछुओं का एक बड़ा परिवार रहता था। उस बड़े परिवार में एक शिशु ने जन्म लिया, उसका नाम पड़ा लोसकतिस्स। जिस दिन से वह मां के गर्भ में आया, उसी दिन से गांव वालों की अवनति प्रारंभ हो गयी। गांव के हजारों परिवारों को नदी-ताल में मछली मिलना बंद हो गया। सात बार गांव आग से जला। सात बार राज-कोप भुगतना पड़ा। दिन-प्रतिदिन दुर्गति का क्रम ऐसे ही चालू रहा। एक उपाय से ग्रामीणों ने अपने दुर्दिन के कारण का पता लगा लिया। लोसकतिस्स का मां की कोख में आना सारी आपदा की जड़ है, इसलिए उस परिवार को सबने मिल कर गांव से बाहर कर दिया। उस परिवार ने तिस्स के गर्भ सहित मां को घर से निकाल दिया। गर्भ के परिपक्व होने पर मां ने किसी प्रकार शिशु को जन्म दिया।

धीरे-धीरे बच्चा कुछ बड़ा हुआ। मां ने भी उससे किसी प्रकार पिंड छुड़ाना चाहा। कोई पात्र न मिलने पर उसके हाथ में एक मानव-खोपड़ी पकड़ा कर भीख मांगने के लिए भेज दिया। स्वयं वहां से भाग गयी। जब तिस्स भीख मांगकर लौटा, तब मां को न पाकर रोने-चिल्लाने लगा। इधर-उधर खोजकर हार गया। बेबस हो वहीं रहने लगा। उस दिन से अकेले

जहां-कहीं, जैसे-तैसे रह जाता। न नहाना न धोना, धूल-धूसरित। भोजन न मिलने पर कभी घर के द्वार पर धोवन के साथ फेंके गये अन्न को ही खाकर दिन विताता। ऐसे ही कष्ट सहते सहते वह सात वर्ष का हो गया।

एक दिन सावत्थी में भिक्षाचार करते समय धर्मसेनापति सारिपुत्त की दृष्टि उस दीन-हीन-मलिन पर पड़ गयी। उनका मन करुणा-विगलित हो उठा। मैत्री-भाव से प्रेरित हो उसे अपने निकट बुलाया। पास आकर स्थविर को प्रणाम कर वह वहीं खड़ा हो गया।

स्थविर ने पूछा – "वत्स! तू किस गांव का रहने वाला है? तेरे मां-बाप कहां हैं?

"भंते! मुझे कुछ पता नहीं है। मेरे कोई नहीं हैं।"

"तू प्रव्रजित होगा?"

"मुझे कौन करेगा?"

"मैं करूंगा।"

"तो भंते! करें," गद्‌गद होकर तिस्स बोला।

स्थविर ने उसे भोजन दिया और अपने साथ विहार ले गये। सायंकाल उसे नहला-धुलाकर प्रव्रजित किया। बाद में वयप्राप्त करने पर उसे उपसंपदा भी दी। वृद्ध होने पर आयुष्मान लोसकतिस्स स्थविर कहलाये। अपुण्यवान होने से वे आजीवन अल्पलाभी रहे। असाधारण दान में भी उन्हें भरपेट भोजन नहीं मिलता था। बस, उतना ही मिलता जो उन्हें जीवित रखने के लिए पर्याप्त होता। एक कलछी यवागू डालने पर ही उनका पात्र पूरा भरा दिखता। इसलिए, परोसने वाले आगे बढ़ जाते। कभी-कभी ऐसा भी होता कि उनके पात्र में भोजन डालते ही वह अदृश्य हो जाता पर विपस्सना भावना में निरंतर जुटे रहने के कारण वे अर्हत फल में प्रतिष्ठित हुए। फिर भी, अल्पलाभी ही रहे।

उनके परिनिर्वाण का समय निकट आया। आयुष्मान सारिपुत्त, उन्हें भरपेट भोजन खिलाने के लिए, अपने साथ लेकर भिक्षाचार के लिए निकले। पर, आयुष्मान लोसकतिस्स के साथ होने के कारण, धर्मसेनापति को सावत्थी में भिक्षा देने की कौन कहे, किसी ने उन्हें प्रणाम तक नहीं किया। तब आयुष्मान तिस्स का भिक्षापात्र लेकर स्थविर कोसल-नरेश के घर गये। महाराज ने विभिन्न प्रकार के भोज्य-पदार्थों से पात्र भर दिया।

लौटकर धर्मसेनापति ने आयुष्मान तिस्स से कहा – "आयुष्मान! भोजन करो।" आयुष्मान सारिपुत्त ने पात्र उनके हाथ में नहीं दिया, अपने ही हाथों में ले रखा था। उन्होंने कहा – "आयुष्मान! तुम निःसंकोच भोजन करो। यदि मैं पात्र को अपने हाथों से छोड़ दूं, तो इसमें कुछ भी नहीं रहेगा।" आयुष्मान तिस्स को अपने पूरे जीवन में केवल उस दिन इच्छा-भर भोजन मिला। धर्मसेनापति के ऋद्धि-बल के कारण भोजन से पात्र भरा ही रहा। उसी दिन आयुष्मान तिस्स परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये। भगवान ने पास खड़े होकर उनका दाह-संस्कार करवाया। उनके शरीर-धातु पर चैत्य भी बनवाया।

धर्मसभा में भिक्षुओं ने पूछा – "भंते! आयुष्मान लोसकतिस्स अपुण्यवान और अल्पलाभी रहे, पर उन्होंने अर्हत्व-लाभ कैसे किया?"

भगवान ने कहा – "भिक्षुओ! इस भिक्षु ने स्वयं अपने को अल्पलाभी बनाया और स्वयं ही अपने को अर्हंत बनाया। पूर्वजन्म में औरों के लाभ में बाधक होने के कारण वर्तमान जन्म में अल्पलाभी हुआ। इस जन्म में अनित्य, दुःख और अनात्म की विपस्सना भावना करके अर्हत्व को प्राप्त हुआ।" ऐसा कहते हुए भगवान ने आयुष्मान लोसकतिस्स के पूर्वजन्म की कथा सुनायी।

सहभिक्षु की मिथ्या धारणा का शोधन

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। उस समय यमक नामक भिक्षु के मन में इस प्रकार की पापयुक्त मिथ्यादृष्टि उत्पन्न हुई कि मैं भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म को इस प्रकार जानता हूं कि क्षीणास्रव भिक्षु शरीर छूटने पर विनष्ट हो जाते हैं, रहते नहीं हैं।

बहुत से भिक्षुओं को यमक भिक्षु की इस पापयुक्त मिथ्या धारणा के बारे में पता चला। तब वे भिक्षु आयुष्मान यमक के पास गये। आयुष्मान यमक के मुख से उनके मन में उत्पन्न पापयुक्त मिथ्यादृष्टि के बारे में सुनकर उन भिक्षुओं ने आयुष्मान यमक को सचेत किया – 'आयुष्मान यमक! ऐसा न कहें। भगवान पर असत्य न थोपें। शास्ता ऐसा कभी नहीं कह सकते कि

क्षीणास्रव भिक्षु देहपात के बाद उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरने के बाद नहीं रहते हैं।'

उन भिक्षुओं के समझाने के बावजूद आयुष्मान यमक ने अपनी धारणा को कायम रखा। तब वे स्थविर सारिपुत्त के पास गये और भिक्षु यमक की मिथ्या धारणा के संबंध में उन्हें बताया। फिर उनसे यह निवेदन किया कि वे आयुष्मान यमक को समझाकर उनकी पापमय मिथ्या धारणा से उन्हें मुक्त कर उनका कल्याण करें।

सायंकाल आयुष्मान सारिपुत्त आयुष्मान यमक के पास गये। कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये। जब आयुष्मान सारिपुत्त के पूछने पर भिक्षु यमक ने अपनी मिथ्या धारणा को स्वीकार किया।

तब आयुष्मान सारिपुत्त ने उसकी इस मिथ्यादृष्टि को दूर किया। इससे उसकी समझ में आया कि यदि कोई यह जानना चाहे कि क्षीणास्रव अर्हत भिक्षु के मरने के बाद क्या होता है, तो उसे यह उत्तर देना चाहिए – 'रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान अनित्य हैं। जो अनित्य है, वह दुःख है; जो दुःख है वह निरुद्ध, अस्त हो गया।' आयुष्मान सारिपुत्त ने एक उपमा द्वारा इसे और भी सुस्पष्ट कर दिया।

"जैसे कोई धनाढ्य वैभवशाली गृहपति अथवा गृहपतिपुत्र हो जिसकी सुरक्षा में सदैव बहुत से आरक्षक तैनात रहते हों। उस समय कोई पुरुष उसका कोई शत्रु बन जाये जो उसकी हत्या करना चाहता हो परंतु उस गृहपति अथवा गृहपतिपुत्र की सुरक्षा व्यवस्था को देखकर उसकी हत्या करना उसे असंभव लगता हो। तब वह किसी बहाने उसका अंतरंग मित्र बनकर उसका विश्वास जीतकर उसकी हत्या करने को सोचता है। उसके द्वारा निवेदन किये जाने पर गृहपति अथवा गृहपतिपुत्र उसे अपनी सेवा में रख लेता है। तब वह नित्यप्रति उस गृहपति अथवा गृहपतिपुत्र की सेवा में तत्पर रहता है। स्वामी के उठने से पहले उठ जाये; स्वामी के सोने के बाद ही सोये; स्वामी की आज्ञापालन हेतु विनम्रभाव से सदैव सम्मुख प्रस्तुत रहे, सदैव प्रियवचन बोले। इस प्रकार वह स्वामी का हृदय जीत लेता है। तब वह किसी दिन उस गृहपति अथवा गृहपतिपुत्र की हत्या कर दे।

"तो आयुष्मान, यमक! तो क्या मानते हो – जब वह मनुष्य उस गृहपति अथवा गृहपतिपुत्र की सेवा के लिए आया था तब भी वह वधक (हत्यारा) था। वधक होते हुए भी उसने नहीं पहचाना कि यह मेरी हत्या करने वाला है।

"जब वह पुरुष उस गृहपति अथवा गृहपतिपुत्र की सेवा में तल्लीन रहता था: स्वामी के जागने से पहले जागता था, स्वामी के सोने के बाद सोता था, स्वामी की आज्ञापालन हेतु विनम्रभाव से सदैव सम्मुख प्रस्तुत रहता था, सदैव प्रियवचन बोलता था, तब भी वह वधक ही था। वधक होते हुए भी उस गृहपति अथवा गृहपतिपुत्र ने नहीं पहचाना कि यह पुरुष एक दिन मेरी हत्या करेगा।

"जब उसने एकांत में उसे अकेला पाकर जान से मार दिया, उस समय भी वह वधक था। वधक होते हुए भी उस गृहपति अथवा गृहपतिपुत्र ने नहीं पहचाना कि यह मेरा वधक है।

"ठीक इसी प्रकार कोई पृथग्जन पंच उपादानस्कंध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) के प्रति मैं, मेरा का भाव उत्पन्न कर लेता है, यथार्थतः उनके अनित्य स्वभाव को नहीं स्वीकार करता, वह इन पंच उपादानस्कंध को वधक के रूप में नहीं देखता है, उनके प्रति उपादान (आसक्ति, चिपकाव) पैदा कर लेता है जिससे कि वह दीर्घकाल तक अहित और दुःख को प्राप्त होता है।

"ठीक इसी प्रकार कोई ज्ञानी आर्यश्रावक रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान को यथार्थतः वधक के रूप में देखता है, उनके प्रति मिथ्याभाव नहीं उत्पन्न करता है, उनके अनित्य स्वभाव को भलीभांति जानकर उनके प्रति उपादान (आसक्ति) नहीं जगाता है जिसके फलस्वरूप वह दीर्घकाल तक हित और सुख को प्राप्त होता है।"

भिक्षु यमक ने स्वीकार किया – "आयुष्मान सारिपुत्त! आपके धर्मोपदेश से मेरी मिथ्या धारणा विनष्ट हो गयी। जिन आयुष्मानों के आप जैसे कृपालु, परमार्थी उपदेशक गुरुभाई होते हैं, उन्हें धर्म समझने में कठिनाई नहीं हो सकती। आयुष्मान सारिपुत्त की धर्मदेशना सुनकर मेरा चित्त उपादानरहित, आस्रवों से मुक्त हो गया है।"

–*संयुत्तनिकाय (२.३.८५), यमकसुत्त*

चित्त व्याकुल न होय!

एक समय भगवान भग्ग जनपद के सुंसुमारगिरि भेसकळावन (नामक) मृगदाय में विहार करते थे।

तब नकुलपिता गृहपति भगवान के पास गया; और उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

तब नकुलपिता गृहपति ने भगवान को यह कहा – "भंते! मैं जरा-जीर्ण, आयुप्राप्त शरीर वाला हूं। न जाने कब मृत्यु को प्राप्त हो जाऊं! मुझे भगवान तथा भिक्षुसंघ के दर्शन भी दुर्लभ लगते हैं। अतः भगवान मुझे ऐसा उपदेश दें जो कि चिरकाल तक मेरे हित एवं सुख के लिए हो।"

"गृहपति! तुम सचमुच जरा-जीर्ण, आयुप्राप्त शरीर वाले हो गये हो। ऐसी अवस्था में जीवन का कोई भरोसा नहीं है। शरीर की ऐसी अवस्था में मुहुर्त्तभर भी जीवन की आशा रखना मूर्खता ही है। अतः, गृहपति, तुम्हें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए – 'मेरा शरीर भले अस्वस्थ हो पर मन स्वस्थ रहना चाहिए।'

तब नकुलपिता गृहपति भगवान के भाषण का अभिनंदन एवं अनुमोदन कर आयुष्मान सारिपुत्त के पास गया और उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। तब नकुलपिता गृहपति को आयुष्मान सारिपुत्त ने यह कहा – "गृहपति, तुम्हारी इंद्रियां प्रसन्न हैं, तुम्हारा मुखवर्ण भी कांतिमान है। अवश्य ही तुम्हें आज भगवान की धर्मकथा सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ है!"

"अवश्य ही, भंते! आज मैं भगवान के धर्मकथारूपी अमृत से अभिषिक्त किया गया हूं।"

"तो हे गृहपति! तुम कैसे भगवान के धर्मकथारूपी अमृत से अभिषिक्त किये गये हो?"

"भंते! मैं भगवान के पास गया, पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। मैंने भगवान को यह कहा – 'भंते! मैं जरा-जीर्ण, आयुप्राप्त शरीर वाला हूं। न जाने कब मृत्यु को प्राप्त हो जाऊं! मुझे भगवान तथा भिक्षुसंघ के दर्शन भी दुर्लभ लगते हैं। अतः भगवान मुझे ऐसा उपदेश दें जो कि चिरकाल तक मेरे हित एवं सुख के लिए हो।'

"तब भगवान ने यह कहा – 'गृहपति! तुम सचमुच जरा-जीर्ण, आयुप्राप्त शरीर वाले हो गये हो। ऐसी अवस्था में जीवन का कोई भरोसा नहीं है। शरीर की ऐसी अवस्था में मुहुर्त्तभर भी जीवन की आशा रखना मूर्खता ही है। अतः, गृहपति, तुम्हें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए – 'मेरा शरीर भले अस्वस्थ हो, पर मन स्वस्थ रहना चाहिए।' "इस प्रकार भंते! मैं भगवान की धर्मकथा रूपी अमृत से अभिषिक्त किया गया हूं।"

"गृहपति, तुमने इसके आगे की बात भगवान से क्यों नहीं पूछी – 'भंते! कैसे शरीर के आतुर होने से चित्त आतुर होता है और कैसे शरीर के आतुर होने पर चित्त आतुर नहीं होता है?'"

"भंते! मैं भगवान के कहे का अर्थ समझने के लिए बहुत दूर से आ रहा हूं। अच्छा हो, भंते! आप ही मुझे भगवान के इस कथन का अर्थ सविस्तार बतलायें।"

"तो हे गृहपति! सुनो, मन में अच्छी तरह धारण करो, मैं कहता हूं।"

"अच्छा, भंते!" ऐसा कह गृहपति ने आयुष्मान सारिपुत्त को प्रत्युत्तर दिया।

आयुष्मान सारिपुत्त बोले – "गृहपति! कैसे शरीर के आतुर होने से चित्त आतुर होता है? गृहपति! कोई अश्रुतवा, पृथग्जन, श्रेष्ठ व्यक्तियों का संग न करने वाला, आर्य-धर्म को न जानने वाला, आर्य-धर्म के प्रति विनीत न रहने वाला, सत्पुरुषों का संग न करने वाला, सत्पुरुषों के धर्म को न जानने वाला, सत्पुरुषों के धर्म के प्रति विनीतभाव न रखने वाला, रूप को अपनापन की दृष्टि से देखता है, रूप को अपना मानता है, अपने को रूप मानता है, रूप को अपना मानता है। 'मैं रूप हूं', 'रूप मेरा है' – ऐसा मानता है। वह जिस रूप को 'मैं रूप हूं', 'रूप मेरा है' – ऐसा मानता है; वह वस्तुतः विपरिणामधर्मा है, बदलने वाला, नष्ट होने वाले स्वभाव का है। उस रूप के परिवर्तित होने से शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी और परेशानी उत्पन्न होते हैं।

"वेदना को अपनापन की दृष्टि से देखता है, वेदना को अपना मानता है, अपने को वेदना मानता है, वेदना को अपना मानता है। 'मैं वेदना हूं', 'वेदना मेरी है' – ऐसा मानता है। वह जिस वेदना को 'मैं वेदना हूं', 'वेदना मेरी है'

– ऐसा मानता है; वह वस्तुतः विपरिणामधर्मा है, बदलने वाली, नष्ट होने वाले स्वभाव की है। उस वेदना के परिवर्तित होने से शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी और परेशानी उत्पन्न होते हैं।"

इसी प्रकार आयुष्मान सारिपुत्त ने नकुलपिता गृहपति को संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के बारे में बतलाया।

संज्ञा, संस्कार, विज्ञान के प्रति अपनापन का भाव रखना, इनके प्रति चिपकाव रखने से शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी और परेशानी उत्पन्न होते हैं। वस्तुतः ये विपरिणामधर्मा हैं, बदलने वाले, नष्ट होने वाले स्वभाव के हैं।

तदुपरांत आयुष्मान सारिपुत्त ने नकुलपिता गृहपति को बतलाया कि कैसे काया के आतुर होने से चित्त आतुर नहीं होता।

"गृहपति! कोई श्रुतवा, श्रेष्ठ व्यक्तियों का संग करने वाला, आर्य-धर्म को जानने वाला, आर्य-धर्म के प्रति विनीत रहने वाला, सत्पुरुषों का संग करने वाला, सत्पुरुषों के धर्म को जानने वाला, सत्पुरुषों के धर्म के प्रति विनीतभाव रखने वाला, रूप को अपनापन की दृष्टि से नहीं देखता है, रूप को अपना नहीं मानता है, अपने को रूप नहीं मानता है, रूप को अपना नहीं मानता है। 'मैं रूप हूं', 'रूप मेरा है' – ऐसा नहीं मानता है। वह जिस रूप को 'मैं रूप नहीं हूं', 'रूप मेरा नहीं है' – ऐसा जानता है; वह वस्तुतः विपरिणामधर्मा है, बदलने वाला, नष्ट होने वाले स्वभाव का है। उस रूप के परिवर्तित होने से शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी और परेशानी उत्पन्न नहीं होते हैं।"

इसी प्रकार वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान के प्रति अपनापन का भाव न रखने से, इनके प्रति चिपकाव न रखने से शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी और परेशानी उत्पन्न नहीं होते हैं क्योंकि आर्यश्रावक अच्छी तरह जानता है कि वस्तुतः ये विपरिणामधर्मा हैं, बदलना, नष्ट होना इनका स्वभाव है। इस प्रकार काया के आतुर होने से चित्त आतुर नहीं होता है।

आयुष्मान सारिपुत्त ने यह कहा। प्रसन्नचित्त नकुलपिता गृहपति ने आयुष्मान सारिपुत्त के कहे का अभिनंदन किया।

–संयुत्तनिकाय (२.३.१), नकुलपितुसुत्त

आयुष्मान सारिपुत्त और विनय

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त के मन में यह वितर्क उठा – "क्या कारण है कि भूतकाल के सम्यक-संबुद्धों के समय कभी सद्धर्म चिरस्थायी रहा, कभी चिरस्थायी न रह सका?" तब आयुष्मान सारिपुत्त भगवान के पास गये, और भगवान का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये। तब आयुष्मान सारिपुत्त ने अपने अंदर उत्पन्न वितर्क को भगवान के समक्ष प्रकट किया। भगवान ने कहा – "जिन सम्यक-संबुद्धों ने सद्धर्म के बारे में बहुत कुछ नहीं कहा, श्रावक-श्राविकाओं के लिए नियम नहीं बनाये और न ही प्रातिमोक्ष (भिक्षु-विनय के दो सौ सत्ताईस नियमों का संग्रह) के बारे में कोई विशेष ध्यान दिया, उन सम्यक-संबुद्धों के काल में सद्धर्म चिरस्थायी न रह सका। इसके विपरीत जिन सम्यक-संबुद्धों ने इन बातों पर जोर दिया, उनके काल में सद्धर्म चिरस्थायी रहा, दीर्घकाल तक लोक-कल्याण होता रहा।"

तब आयुष्मान सारिपुत्त अपने आसन से उठे, भगवान को विधिवत प्रणाम किया तथा भगवान से बोले – "भंते! भगवान विनय के नियमों की आधारशिला रखें, प्रातिमोक्ष के बारे में जानकारी दें जिससे कि सद्धर्म चिरस्थायी रह सके।" भगवान आयुष्मान सारिपुत्त से बोले – "रहने दो, सारिपुत्त! तथागत स्वयं जानते हैं कि इसके लिए उचित समय कब आयगा। तथागत तब तक विनय के नियमों की नींव नहीं रखेंगे तथा प्रातिमोक्ष के बारे में कुछ नहीं कहेंगे जब तक वे स्वयं संघ में दुराचरण का कोई संकेत न देख लें।"

–विनयपिटक (१८-२१), पाराजिककण्डपालि

बीमार सारिपुत्त की सेवा

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त कायदाह (शरीर की जलन) के रोग से पीड़ित थे। तब आयुष्मान महामोग्गल्लान आयुष्मान सारिपुत्त के पास गये।

और आयुष्मान सारिपुत्त से पूछा – "आयुष्मान! पहले जब आपको यह कष्ट होता था, तब कैसे अच्छा होता था?"

"आयुष्मान! भसींड़ (कमल-मूल) और कमल-नाल के सेवन से।"

इतना सुनते ही आयुष्मान मोग्गल्लान बड़ी ही आसानी से सावत्थी में अंतर्धान हो मंदाकिनी-पुष्करिणी के किनारे प्रकट हुए। वहां से भसींड़ और कमल-नाल आयुष्मान सारिपुत्त को लाकर दिया। भसींड़ और कमल-नाल के सेवन से आयुष्मान सारिपुत्त का रोग शांत हो गया। आयुष्मान सारिपुत्त द्वारा भसींड़ और कमल-नाल का सेवन करने के उपरांत भी यह काफी मात्रा में शेष रह गया। इस भसींड़ और कमल-नाल के सेवन हेतु भगवान ने यह शिक्षापद प्रज्ञापित किया –

"अनुजानामि, भिक्खवे, वनट्ठं पोक्खरट्ठं भुत्ताविना पवारितेन अनतिरित्तं परिभुञ्जितुन्ति।"

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूं वन की और पुष्करिणी की वस्तु को भोजन पूरा हो जाने पर भी अतिरिक्त न हो तो उसे भोजन करने की।"

–विनयपिटक (२७८), महावग्गपालि

लहसुन खाने की अनुमति

एक समय बड़ी परिषद के बीच बैठे हुए भगवान धर्मोपदेश करते थे। एक भिक्षु ने लहसुन खाया था। लहसुन की दुर्गंध से उसे दूसरे भिक्षु न टोकें, इस विचार से वह अलग बैठा था। भगवान ने उसे अलग बैठे देखा तब भिक्षुओं से पूछा – "भिक्षुओ! वह भिक्षु अलग क्यों बैठा है?"

"भंते! उसने लहसुन खाया है। उसे कोई भिक्षु न टोंके इसलिए अलग बैठा है।"

"भिक्षुओ! क्या वह खाने की चीज है, जिसे खाकर इस प्रकार की धर्म परिषद से अलग बैठना पड़े?"

"नहीं भंते!"

"न, भिक्खवे, लसुणं खादितब्बं। यो खादेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा"ति।

"भिक्षुओ! लहसुन नहीं खाना चाहिए। जो खाये उसे दुष्कृत का दोष है।"

कुछ दिनों बाद आयुष्मान सारिपुत्त के पेट में दर्द हुआ। आयुष्मान महामोग्गल्लान उनके पास गये और पूछा –"आयुष्मान सारिपुत्त! आपका पेट-दर्द कैसे अच्छा होता है?"

"आयुष्मान! लहसुन खाने से।"

ऐसा सुनकर आयुष्मान महामोग्गल्लान भगवान के पास गये। उन्होंने भगवान से आयुष्मान सारिपुत्त का सब हाल बताया।

भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया –

"अनुजानामि, भिक्खवे, आबाधप्पच्चया लसुणं खादितु"न्ति।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूं; ओषधि के रूप में लहसुन प्रयोग करने की।"

–विनयपिटक (२८९), चूळवग्गपाळि

अतिरिक्त चीवर रखने का विधान

एक समय आयुष्मान आनन्द को अतिरिक्त चीवर प्राप्त हुआ। आयुष्मान आनन्द उस चीवर को आयुष्मान सारिपुत्त को समर्पित करना चाहते थे। लेकिन वे उस समय साकेत में विहार करते थे। आयुष्मान आनन्द को यह विचार उत्पन्न हुआ – 'भगवान ने अतिरिक्त चीवर अपने पास न रखने का विधान बनाया है। आयुष्मान सारिपुत्त इस समय साकेत में विहार कर रहे है। अतः इस परिस्थिति में इस चीवर का क्या करना चाहिए?" तब आयुष्मान आनन्द ने अपनी व्यथा को भगवान के समक्ष व्यक्त किया। भगवान ने पूछा – "आनन्द! सारिपुत्त कब तक आयगा?"

"भंते! नवें या दसवें दिन।"

तब भगवान ने इसी संबंध में, इसी प्रकरण में, धार्मिक कथा कहकर भिक्षुओं को संबोधित किया –

"अनुजानामि, भिक्खवे, दसाहपरमं अतिरेकचीवरं धारेतु"न्ति।"

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूं दस दिन तक अतिरिक्त चीवर अपने पास रखने की।"

–विनयपिटक (३४७), महावग्गपालि

दान-अनुमोदन का नियम

एक समय भिक्षुगण भोजनशाला में भोजन का अनुमोदन नहीं करते थे। भिक्षुओं के इस व्यवहार से उपासकगण क्षुब्ध थे। भगवान को जब इस बात का पता चला तब भगवान ने भिक्षुओं को कहा –

"अनुजानामि, भिक्खवे, भत्तग्गे अनुमोदितु"न्ति।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूं, भोजनशाला में भोजन के अनुमोदन की।"

तब भिक्षुओं ने विचार किया कि भोजनशाला में किसके द्वारा अनुमोदन किया जाना चाहिए?

तब भगवान ने इसी संबंध में इसी प्रकरण में धार्मिक कथा कह भिक्षुओं को संबोधित किया –

"अनुजानामि, भिक्खवे, थेरेन भिक्खुना भत्तग्गे अनुमोदितु"न्ति।

"भिक्षुओ! भोजनशाला में स्थविर भिक्षु द्वारा अनुमोदन करने की अनुमति प्रदान करता हूं।"

एक बार एक वैश्य-समुदाय ने संघ को भोजन दान हेतु आमंत्रित किया। उसमें आयुष्मान सारिपुत्त ज्येष्ठतम भिक्षु थे। भोजनोपरांत स्थविर सारिपुत्त ने भोजन का अनुमोदन किया और धर्मोपदेश भी दिया। उनके अनुमोदन करते समय अन्य सभी भिक्षु उन्हें यह सोचकर अकेला छोड़कर चले गये कि भगवान ने भोजनशाला में स्थविर भिक्षु द्वारा अनुमोदन करने की अनुमति प्रदान की है, अतः उनका वहां रुकने का क्या प्रयोजन!

भगवान ने आयुष्मान सारिपुत्त को दूर से ही अकेले आते हुए देखा। पास आने पर उन्होंने पूछा – "सारिपुत्त! भोजन ठीक रहा?"

"हां भंते! भोजन ठीक रहा।"

"तुम अकेले क्यों हो?"

"भंते! जब मैं अनुमोदन कर रहा था, तब अन्य सभी भिक्षु मुझे वहीं छोड़कर चले आये। इसलिए मैं अकेले आ रहा हूं।"

"सारिपुत्त! यह उचित नहीं!"

तब भगवान ने इसी संबंध में इसी प्रकरण में धार्मिक कथा कह भिक्षुओं को संबोधित किया –

"अनुजानामि, भिक्खवे, भत्तग्गे चतूहि पञ्चहि थेरानुथेरेहि भिक्खूहि आगमेतु"न्ति।"

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूं, भोजनशाला में चार-पांच (उपसंपदा के क्रम से) स्थविरों-अनुस्थविरों को (अनुमोदन कर लेने तक) प्रतीक्षा करने की।"

–विनयपिटक(३६२), चूळवग्गपाळि

अग्रपिंड के लिए योग्य भिक्षु

एक बार भगवान वेसाली से चारिका करते हुए सावत्थी की ओर जा रहे थे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षुओं के शिष्य बुद्ध-सहित भिक्षुसंघ के आगे-आगे पहुँचकर अपने आचार्य के लिए, उपाध्याय के लिए तथा अपने लिए भी विहार, शयनासन आदि दखल कर लेते। पीछे पहुँचने पर आयुष्मान सारिपुत्त तथा अन्य भिक्षुओं को विहार में स्थान नहीं मिलता। इसलिए उन्हें बाहर रहना पड़ता।

एक जगह भगवान भिनसार में उठे। उन्होंने आयुष्मान सारिपुत्त सहित अन्य भिक्षुओं को वृक्ष के नीचे बाहर बैठे हुए देखा। भगवान ने पूछा – "सारिपुत्त! तुमलोग यहां क्यों बैठे हो?" भगवान के ऐसा पूछने पर आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान से सारी बात बतायी। सह-भिक्षुओं ने भी उनकी बात का समर्थन किया। इस पर भगवान ने षड्वर्गीय भिक्षुओं के शिष्यों को धिक्कारा, फटकारा – "भिक्षुओ! तुम्हारा यह कार्य न तो अपनों को प्रसन्न करने के लिए है; न ही अश्रद्धालुओं में श्रद्धा बढ़ाने के लिए है। तुम्हारे ऐसे कार्यों का तो विपरीत और प्रतिकूल परिणाम होगा।"

फिर भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया – "भिक्षुओ! प्रथम आसन, प्रथम जल, प्रथम भोजन.....पाने के लिए कौन भिक्षु सुयोग्य होता है?"

भिक्षुओं ने अपने ढंग से उत्तर दिये। किसी ने कहा – 'जिसकी भिक्षु पूर्व जाति श्रेष्ठ हो', किसी ने कहा – 'जो विनयधर हो', किसी ने – 'जो धर्मकथिक हो', 'जो ऊंचे स्तर के ध्यान में पहुँचा हो', 'जो मार्ग-फल प्राप्ति में आगे हो', इत्यादि इत्यादि।

तदुपरांत भगवान ने अपनी पूर्व जन्मकथा (तीतर जातक) सुनाते हुए भिक्षुओं को संबोधित किया –

अतीत काल में हिमालय के पास एक विशाल वरगद वृक्ष था। उसके आश्रय में तीतर, वानर और हाथी – तीन मित्र रहते थे। उन तीनों की आपस में कभी भी पटती नहीं थी। एक दूसरे की निंदा और दोष-दर्शन में लगे रहते। इससे उन्हें बड़ी असुविधा होती। एक दिन उन सबों ने आपसी मेल-जोल बढ़ाने का उपाय सोचा – 'जो सबसे जेठा हो, उसके प्रति सभी आदर-सत्कार और गौरव का भाव रखें। उसकी बात सभी मानें।'

ऐसा सोचकर तीनों मित्रों ने अपनी-अपनी आयु के संबंध में कुछ बातें बतानी प्रारंभ कीं । सबसे पहले हाथी बोला – 'मित्रो! जब मैं छोटा था तब इस वरगद को अपने पैरों के बीच करके लांघ जाता था।' इसके बाद बंदर ने बताया – 'हे साथियो! छुटपन में मैं जमीन पर बैठे-बैठे इसकी फुनगी खाता था।' अंत में तीतर की बारी आयी। उसने कहा – 'हे मित्रो! पहले मैं एक अन्य वरगद के वृक्ष पर रहता था। उसका फल खाकर मैं आया और यहां बीट कर दी। तब यह बरगद वृक्ष उगा।'

तीतर की बातें सुनकर बंदर और हाथी ने उसे ज्येष्ठ स्वीकारते हुए कहा – "मित्र तीतर! तुम हम सबमें ज्येष्ठतम हो। आज से हम दोनों तुम्हारा आदर-सत्कार और गौरव करेंगे। तुमसे शिक्षा ग्रहण करेंगे।"

तब तीतर ने स्वयं पंचशील ग्रहण किया। अपने दोनों मित्रों को भी पंचशील की शिक्षा दी। उसके बाद वे तीनों परस्पर स्नेह, सौहार्द और सम्मान के साथ रहने लगे। ऐसा करते हुए तीनों मृत्यु के उपरांत स्वर्गगामी हुए।

अंत में भगवान ने कहा – "भिक्षुओ! तिर्यक (पशु-पक्षी) योनि के प्राणी जब इस प्रकार जीवनयापन करते हैं, तब ऐसे सु-आख्यात धर्मविनय में प्रव्रजित होकर तुमलोग न तो एक दूसरे का आदर-सत्कार और न ही गौरव करते हो, न ही सम्यक-रूप से धर्मपूर्वक जीवन-यापन करते हुए विहार करते हो।

"जब पशु-पक्षी अपने में ज्येष्ठ के प्रति आदर-सत्कार और गौरव का व्यवहार करते हैं, तब भी तुम लोग ऐसे धर्मविनय में प्रव्रजित होकर इस बात को नहीं समझ पा रहे हो।

"अनुजानामि, भिक्खवे, यथावुड्ढं अभिवादनं, पच्चुट्ठानं, अञ्जलिकम्मं, सामीचिकम्मं, अग्गासनं, अग्गोदकं, अग्गपिण्डं। न च, भिक्खवे, सङ्घिकं यथावुड्ढं पटिबाहितब्बं। यो पटिबाहेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा"ति।

"भिक्षुओ! सांघिक वृद्धपन (धर्म में पहले प्रव्रजित) प्रथम अभिवादन, कुशल-क्षेम पूछना, प्रथम आसन, प्रथम जल, प्रथम भोजन के लिए योग्य और अधिकारी होता है। सांघिक वृद्धपन के अनुसरण को न तोड़ना चाहिए, जो तोड़े उसको दुष्कृत का दोष लगे।"

–विनयपिटक (३१०), चूळवग्गपाळि

धर्मानुसार व्यवहार

कोसम्बक भिक्षु झगड़ालू, बात-बात में कलह, वाद-विवाद करने वाले तथा संघ में आरोप-प्रत्यारोप लगाने वाली प्रवृत्ति के थे। आयुष्मान सारिपुत्त को जब उनके सावत्थी आगमन के बारे में जानकारी हुई तब वह भगवान के पास आये और उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। तब आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान से यह कहा – "भंते! कोसम्बक भिक्षु जो झगड़ालू, बात-बात में कलह, वाद-विवाद करने वाले तथा संघ में आरोप-प्रत्यारोप लगाने वाली प्रवृत्ति के हैं, वे सावत्थी आ रहे हैं। भंते! उन भिक्षुओं के साथ मुझे कैसा आचरण करना चाहिए?"

"सारिपुत्त! तू धर्म के अनुसार उनके साथ व्यवहार कर।"

"भंते! मैं धर्म, अधर्म की पहचान कैसे करूं?"

अधर्मवादी की पहचान :

"सारिपुत्त! इन अट्ठारह बातों से अधर्मवादी की पहचान करनी चाहिए।

"१. अधर्म को धर्म कहता है और

"२. धर्म को अधर्म कहता है।

"३. अविनय को विनय कहता है और

"४. विनय को अविनय कहता है।

"५. तथागत द्वारा अकथित को तथागत द्वारा कथित कहता है।

"६. तथागत द्वारा कथित को तथागत द्वारा अकथित कहता है।

"७. तथागत द्वारा अनाचरित को तथागत द्वारा आचरित कहता है तथा

"८. तथागत द्वारा आचरित को तथागत द्वारा अनाचरित कहता है।

"९. तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त (अविहित) को प्रज्ञप्त कहता है तथा

"१०. तथागत द्वारा प्रज्ञप्त को अप्रज्ञप्त कहता है।

"११. अनापत्ति को आपत्ति (=दोष) कहता है।

"१२. आपत्ति को अनापत्ति कहता है।

"१३. छोटे दोष को बड़ा दोष कहता है।

"१४. बड़े दोष को छोटा दोष कहता है।

"१५. अपूर्ण आपत्ति को पूर्ण आपत्ति कहता है।

"१६. पूर्ण दोष को अपूर्ण दोष कहता है।

"१७. दौष्ठुल्य (दुराचरण) आपत्ति को अदौष्ठुल्य आपत्ति कहता है।

"१८. अदौष्ठुल्य आपत्ति को दौष्ठुल्य आपत्ति कहता है।"

"हे सारिपुत्त! इन अट्ठारह बातों से अधर्मवादी की पहचान करनी चाहिए।

धर्मवादी की पहचान :

"सारिपुत्त! इन अट्ठारह बातों से धर्मवादी की पहचान करनी चाहिए।

"१. अधर्म को अधर्म कहता है और

"२. धर्म को धर्म कहता है।

"३. अविनय को अविनय कहता है और

"४. विनय को विनय कहता है।

"५. तथागत द्वारा अकथित को तथागत द्वारा अकथित कहता है।

"६. तथागत द्वारा कथित को तथागत द्वारा कथित कहता है।

"७. तथागत द्वारा अनाचरित को तथागत द्वारा अनाचरित कहता है तथा

"८. तथागत द्वारा आचरित को तथागत द्वारा आचरित कहता है।

"९. तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त (अविहित) को अप्रज्ञप्त कहता है तथा

"१०. तथागत द्वारा प्रज्ञप्त को प्रज्ञप्त कहता है।

"११. अनापत्ति को अनापत्ति (अदोष) कहता है।

"१२. आपत्ति को आपत्ति कहता है।

"१३. छोटे दोष को छोटा दोष कहता है।

"१४. बड़े दोष को बड़ा दोष कहता है।

"१५. अपूर्ण आपत्ति को अपूर्ण आपत्ति कहता है।

"१६. पूर्ण दोष को पूर्ण दोष कहता है।

"१७. दुःस्थौल्य (दुराचरण) आपत्ति को दुःस्थौल्य आपत्ति कहता है।

"१८. अदुःस्थौल्य आपत्ति को अदुःस्थौल्य आपत्ति कहता है।"

"हे सारिपुत्त! इन अट्ठारह बातों से धर्मवादी की पहचान करनी चाहिए।"

–विनयपिटक (४६८), महावग्गपाळि

घातक महत्त्वाकांक्षा का शिकार

एक समय भगवान राजपरिषद से घिरे धर्मोपदेशना दे रहे थे। तब देवदत्त अपने आसन से उठा। एक कंधे पर उत्तरासंग रखकर भगवान को अंजलिबद्ध प्रणाम किया। फिर कहा – "भंते! भगवान अब वयप्राप्त हैं, वृद्ध हैं, जीर्ण हैं। अच्छा हो भंते! भगवान निश्चिंत होकर सुखपूर्वक विहार करें और भिक्षुसंघ के संचालन की जिम्मेदारी मुझे सौंप दें।"

"देवदत्त! अपने मन में ऐसी आकांक्षा को अवकाश न दो। ऐसी दुराशा न पालो।"

देवदत्त ने दूसरी और तीसरी बार भी वही बात कही। दृढ़तापूर्वक भगवान ने कहा – "देवदत्त! मैं सारिपुत्त और महामोग्गल्लान को भी भिक्षु-संघ की जिम्मेदारी नहीं देता, तुझ मृतक थूक (शवतुल्य तथा फेंके गये थूक के समान) जैसे का क्या कहना!"

ऐसा सुनकर अपने को अपमानित महसूस करते हुए असंतुष्ट, अप्रसन्न और क्रुद्ध देवदत्त भगवान का अभिवादन और उनकी प्रदक्षिणा कर वहां से बाहर चला गया।

इस घटना के पश्चात भगवान ने भिक्षुसंघ को संबोधित किया – "भिक्षुओ! संघ देवदत्त के इस आचरण के संबंध में राजगह की जनता को प्रज्ञप्त (सूचित) करे – 'पूर्व में देवदत्त अन्य प्रकृति का था। अब वह अन्य प्रकृति का हो गया है।' इसलिए, देवदत्त काया और वचन से जो कुछ भी करेगा, उसके लिए बुद्ध, धर्म और संघ उत्तरदायी नहीं होंगे।"

भगवान के निर्देश पर संघ ने विधिवत उक्त प्रस्ताव पारित किया। भगवान ने आयुष्मान सारिपुत्त को यह निर्णय प्रकाशित करने के लिए अधिकृत किया। आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान से कहा – "भंते! पहले मैं राजगह में देवदत्त की प्रशंसा किया करता था। अब मैं कैसे उसके इस दुष्कृत्य को जनता के समक्ष उजागर करूं। भगवान के समझाने पर आयुष्मान सारिपुत्त इस कार्य के लिए राजी हो गये। संघ ने विधिवत सारिपुत्त को इस सूचना के प्रकाशन के लिए अधिकृत किया। आयुष्मान सारिपुत्त ने बहुत से भिक्षुओं के साथ राजगह में प्रवेश करके देवदत्त के बारे में लोगों को बताया –

"पूर्व में देवदत्त अन्य प्रकृति का था, अब वह अन्य प्रकृति का हो गया है। इसलिए, देवदत्त काया और वचन से जो कुछ भी करेगा, उसके लिए बुद्ध, धर्म, संघ उत्तरदायी नहीं होंगे।"

–विनयपिटक (३३६), चूळवग्गपालि

दुर्मन की दुर्गति

क्रोध से उत्पन्न दाह

एक बार आयुष्मान सारिपुत्त वर्षावास की समाप्ति पर यात्रा पर जाना चाहते थे। इस प्रयोजन हेतु उन्होंने भगवान से अनुमति प्राप्त की। उनकी वंदना कर अपने भिक्षु परिवार के साथ धर्मचर्या के लिए निकले। अनेक भिक्षु उनके साथ जाने लगे। उन्होंने बहुतों को उनके नाम-गोत्र के साथ संबोधित करके लौटा दिया। एक भिक्षु का नाम-गोत्र न ज्ञात होने के कारण स्थविर ने उसे संबोधित नहीं किया। इसे उसने अपनी उपेक्षा और अपमान समझा। इसलिए, क्रोध के वशीभूत उसने भगवान से शिकायत की – "भंते आयुष्मान सारिपुत्त ने 'मैं बुद्ध का अग्रश्रावक हूं' इस अहंकार में मेरी कनपटी पर थप्पड़ मारा और फिर बुरी तरह पीटा। भंते! इस दुर्व्यवहार के लिए उन्होंने क्षमायाचना भी नहीं की।" ऐसा सुनकर शास्ता ने स्थविर सारिपुत्त को बुलवाया।

भगवान का बुलावा पाकर आयुष्मान सारिपुत्त ने सोचा कि भगवान तो सब जान रहे हैं कि भिक्षु झूठी शिकायत कर रहा है, पर वे मुझसे सत्य का सिंहनाद कराना चाहते हैं। वहां पर उपस्थित आयुष्मान महामोग्गल्लान और आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान सारिपुत्त द्वारा सत्य का सिंहनाद किये जाने के भाव को जानकर सभी भिक्षुओं को एकत्रित किया।

आयुष्मान सारिपुत्त आये और भगवान की वंदना करके एक ओर बैठ गये। तब आयुष्मान सारिपुत्त से भगवान ने भिक्षु को पीटे जाने की बात पूछी।

उन्होंने अपनी सफाई में यह नहीं कहा कि मैंने इसे नहीं पीटा है। बल्कि, भगवान की इच्छा के अनुसार सिंहनाद करते हुए पृथ्वी के धैर्य, महाप्राज्ञ के शील, सींगरहित वृषभ की सिधाई, आदि नव उपमाओं के आख्यान के साथ

भिक्षु को नहीं पीटने की सच्चाई की पुष्टि कर दी। इसे सुनकर क्षीणास्रव भिक्षुओं के अंदर धर्म-संवेग जागा।

स्थविर के आख्यान करते समय आरोपकारी भिक्षु के शरीर में दाह उत्पन्न होना शुरू हुआ। वह भयभीत होकर भगवान के चरणों में गिर पड़ा। अपनी भूल स्वीकार कर ली। शास्ता बोले – "सारिपुत्त! क्षमा करो इस मूर्ख को, नहीं तो इसके सिर के खंड-खंड हो जाएंगे।" भगवान के आदेशानुसार आयुष्मान सारिपुत्त ने शास्ता के चरणों में बैठकर हाथ जोड़कर कहा – "इस आयुष्मान को क्षमा करता हूं। आयुष्मान! यदि मेरा कोई दोष है तो मुझे भी क्षमा करो।" शास्ता ने कहा – "भिक्षुओ! सारिपुत्त जैसे लोगों में द्वेष और क्रोध होना असंभव है। सारिपुत्त का हृदय तो महापृथ्वी के समान धैर्यवान, इंद्रकील के समान दृढ़ और गंगाजल के समान परिशुद्ध और निर्मल है।"

पथविसमो नो विरुज्झति, इन्दखिलुपमो तादि सुब्बतो।
रहदोव अपेतकद्दमो, संसारा न भवन्ति तादिनो॥

[सुंदर व्रतधारी अर्हंत (=तादि) पृथ्वी के समान क्षुब्ध न होने वाला और इंद्रकील के समान अकंप्य होता है। वैसे (व्यक्ति) को कर्दम(कीचड़) रहित जलाशय की भांति संसार (-मल) नहीं होते।]

– धम्मपद (९५), अरहन्तवग्ग

पनपे नहीं द्वेष, चित्त यदि सागर-सा गंभीर।
धरती-सा धीरज वाला, निर्मल गंगा का नीर॥

दंभी की जबान बंद

एक समय भगवान सवत्थी में विहार करते थे। पसूर नामक एक परिव्राजक अपने को महान शास्त्रज्ञ मानता था। उसके अनुसार जंबुद्वीप में उसके जैसा शास्त्रों का ज्ञाता कोई नहीं था। उन दिनों की प्रथा के अनुसार पसूर ने जामुन की एक टहनी जमीन में गाड़ कर कहा – "जो मेरे साथ शास्त्रार्थ करने में समर्थ हो वही इस शाखा को उखाड़े।" यह कहकर वह स्वयं भिक्षाटन के लिए चला गया। कुछ देर बाद लौटा, तो शाखा को रौंदा हुआ पाया। उसे पता चला कि वुद्ध श्रावक सारिपुत्त ने ऐसा किया है। यह जानकर

वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ, कि अब विवाद में आयुष्मान सारिपुत्त को पराजित कर अपने पांडित्य का झंडा गाड़ देगा।

ऐसा सोचकर वह भारी जन-समूह और मीमांसकों (शास्त्र-मर्मज्ञों) के साथ स्थविर सारिपुत्त के पास विहार के द्वार पर पहुँचा और पूछा – "श्रमण! मेरे जंबुध्वज को तुमने तोड़ा है?"

आयुष्मान सारिपुत्त ने स्वीकारात्मक मुद्रा में उसकी ओर देखते हुए कहा – "हां, परिव्राजक!"

पसूर बोला – "तो शास्त्रार्थ प्रारंभ हो।" "हां, परिव्राजक! प्रारंभ हो।"

इस बात पर दोनों व्यक्ति सहमत हो गये कि पहले पसूर परिव्राजक प्रश्न करेगा और स्थविर उसका उत्तर देंगे। प्रश्नोत्तर का सिलसिला चला।

परिव्राजक चालाक था। उसे लगा, 'कि अब हार जाऊंगा', तब वह स्थविर का शिष्य बन गया। धीरे-धीरे शठ भाव से उसने आयुष्मान सारिपुत्त से उनकी सारी विद्या सीख ली। फिर उनके साथ विवाद रोपा और पराजित कर दिया। दंभी तो वह पहले से ही था, अब उसमें और वृद्धि हो गयी। सोचा, अब श्रमण गोतम को पराजित कर जंबुद्वीप में एकच्छत्र विचरूं।

ऐसा सोचकर पहले की ही तरह सावत्थी के नागरिकों और मीमांसकों को एकत्र कर वह विहार की ओर चला। रास्ते में भगवान से प्रश्न पूछने, उनसे उत्तर न पाने, उन्हें पराजित करने आदि मनोरथ करता हुआ वह विहार-द्वार पहुँचा। विहार-द्वार के रक्षक देवता ने परिव्राजक की दुर्भावना को भांपकर, 'यह अपात्र है', ऐसा सोच उसके मुँह को बांध दिया।

पसूर भगवान के समीप आया और एक ओर बैठ गया। वह कुशल-क्षेम भी नहीं पूछ सका। उसके मुँह की ओर देखकर लोग सोच रहे थे, 'अब कुछ बोलेगा, अब कुछ पूछेगा'। पर वह एकदम गुमसुम हो गया। जनता ने उसे प्रेरित करना प्रारंभ किया, 'पसूर बोलो न, प्रश्न पूछो न.....'। पर, वह एकदम अवाक गूंगों-बहरों जैसा इधर-उधर ताकता रहा। लोगों द्वारा प्रोत्साहित किये जाने का भी उस पर तनिक प्रभाव नहीं पड़ा। वह गूंगे की तरह ही भगवान के पास बैठा रहा।

'पसूर कुछ नहीं बोल सकेगा', ऐसा कहते हुए शास्ता ने परिषद को धर्मदेशना दी।

कषाय वस्त्र धारण करने का अयोग्य पात्र

एक अवसर पर दोनों अग्रश्रावक अपने पांच-पांच सौ भिक्षु परिवार के साथ भगवान की वंदना करके सावत्थी से राजगह गये। वहां जनता उनका खूब स्वागत-सत्कार करती। एक दिन भोजन-दान के पश्चात स्थविर सारिपुत्त ने अनुमोदन करते हुए दाताओं के चार प्रकार बताये :

१. जो स्वयं दान देता है, दूसरों को प्रेरित नहीं करता, वह जहां-जहां पैदा होता है वहां-वहां भोग-संपत्ति प्राप्त करता है, परिवार-संपत्ति नहीं प्राप्त करता है।

२. जो स्वयं दान नहीं देता है, दूसरों को प्रेरित करता है, वह जहां-जहां पैदा होता है, वहां-वहां परिवार-संपत्ति प्राप्त करता है, भोग-संपत्ति नहीं प्राप्त करता है।

३. जो न स्वयं दान देता है, न दूसरों को प्रेरित करता है, वह जहां-जहां पैदा होता है, वहां-वहां उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता, वह अनाथ-सा जीवन जीता है।

४. जो स्वयं दान देता है, दूसरों को प्रेरित भी करता है, वह जहां-जहां पैदा होता है, वहां-वहां भोग-संपत्ति और परिवार-संपत्ति दोनों ही प्राप्त करता है।

ऐसी धर्मदेशना सुनकर एक ज्ञानी जन में दोनों संपत्तियों को प्राप्त करने की प्रेरणा जगी। उसने स्थविर को भोजन के लिए दूसरे दिन आमंत्रित किया। स्थविर ने पूछा, "उपासक! तुम्हें कितने भिक्षु चाहिए?" "उपासक! एक हजार।"

"भंते! सभी के साथ मेरी भिक्षा स्वीकार करें।"

मौन रहकर स्थविर ने उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। नगर के रास्ते जाते हुए वह उपासक लोगों से कहता – "अम्मा! तात! भाई! मैंने हजार भिक्षुओं को भोजन हेतु आमंत्रित किया है। आप कितनों को भिक्षा-दान कर सकते हैं? आप कितनों को कर सकते हैं?....." इस प्रकार अपनी शक्ति के अनुसार कोई कोई दस, कोई बीस, कोई पचास, कोई सौ.....कह कर उनकी जिम्मेदारी लेता। फिर सभी दाताओं ने मिलकर एक ही स्थान पर चावल, दाल, घी, तेल, मधु आदि एकत्र किया और वहीं भोजन-दान की व्यवस्था की गयी।

एक उपासक ने शत सहस्र मूल्य का एक सुगंधित काषायवस्त्र देकर कहा, "यदि दानवस्तु पर्याप्त न हो, तो इसे बेचकर उसकी कमी को पूरा किया जाय। यदि पर्याप्त हो, तो इसे जिस भिक्षु को चाहें उसे दे दें।"

सभी दानवस्तुएं पर्याप्त रहीं। कोई कमी नहीं पड़ी। तब उस उपासक ने लोगों से पूछा – "पूज्य! इस वस्त्र को किसे दिया जाय?" कुछ ने कहा – 'स्थविर सारिपुत्त को।' पर कुछ भिक्षुओं ने आयुष्मान देवदत्त की प्रशंसा करते हुये उनका पक्ष लिया। काफी विचार-विमर्श के पश्चात यह तय हुआ कि वस्त्र आयुष्मान देवदत्त को ही दिया जाय। आयुष्मान देवदत्त ने उसे लेकर अच्छी तरह रंगवाया, सिलवाया। उसे पहनकर सजधज के साथ घूमने लगे। उन्हें पहने हुए देखकर लोग प्रायः यही कहते, 'इस वस्त्र के योग्य आयुष्मान सारिपुत्त ही हैं, न कि आयुष्मान देवदत्त।'

कुछ दिनों बाद राजगह से सावत्थी की ओर जानेवाला एक भिक्षु जेतवन पहुँचा। भगवान की वंदना करके वह एक ओर बैठ गया। तब भिक्षु से भगवान ने अग्रश्रावकों और संघ के बारे में पूछा। उसने शास्ता से सारी बात बतायी।

ऐसा सुनकर भगवान ने कहा – "भिक्षु! केवल अभी ही देवदत्त ने अपनी शोभा के प्रतिकूल वस्त्र धारण नहीं किया है, बल्कि वह अपने पूर्वजन्म में भी ऐसा कर चुका है।"

इतना कहकर अतीत की वह घटना शास्ता ने भिक्षु को सुनायी।

अनिक्कसावो कासावं, यो वत्थं परिदहिस्सति।
अपेतो दमसच्चेन, न सो कासावमरहति॥

–धम्मपद (९), यमकवग्ग

[जिसने कषायों (चित्तमलों) का परित्याग नहीं किया है पर कषाय वस्त्र धारण किये हुए है, वह संयम और सत्य से परे है। वह कषाय वस्त्र (धारण करने) का अधिकारी नहीं है।]

संघ में फूट

एक दिन उपोसथ से उठ कर देवदत्त ने भगवान के सामने अपनी पांच मांगें रखीं। भगवान ने इन्हें अस्वीकार कर दिया। इस पर उसने अवसर का लाभ उठाया और हाल ही में प्रव्रजित हुए पांच सौ भिक्षुओं को अपने पक्ष में कर लिया। तब तक इन भिक्षुओं को धर्म और विनय की वास्तविक समझ भी नहीं हुई थी। इस प्रकार देवदत्त संघ को फोड़ इन पांच सौ भिक्षुओं को अपने साथ लेकर गयासीस के पास चला गया। इस घटना के पश्चात आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महामोग्गल्लान भगवान के पास गये। आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान से कहा – "भंते, देवदत्त संघ को फोड़कर पांच सौ नये भिक्षुओं को साथ लेकर गयासीस के पास चला गया है।"

भगवान ने कहा – "आयुष्मानो, उन नये भिक्षुओं पर तुम लोगों को दया नहीं आयी? वे किस विपत्ति में जा फँसे? उनपर किसी प्रकार की आपत्ति आवे, इससे पूर्व तुम लोग जाओ और उन्हें किसी तरह बचाओ।"

शास्ता के निर्देश पर दोनों महास्थविर गयासीस की ओर चल पड़े। वहां पहुँचने पर उन लोगों ने देखा कि एक बड़ी परिषद के बीच में बैठकर देवदत्त धर्मोपदेश कर रहा है। दूर से ही स्थविर सारिपुत्त और महामोग्गल्लान को आते देखकर देवदत्त ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओ, देखो मेरा धर्म कितना सुस्पष्ट और सुआख्यात है! श्रमण गोतम के दोनों अग्रश्रावक – सारिपुत्त और महामोग्गल्लान – मेरे पास आ रहे हैं। वे दोनों ही श्रमण गोतम को छोड़कर अब मेरा धर्म मानने लगे हैं।"

ऐसा कहने पर भिक्षु कोकालिक ने देवदत्त को सचेत किया, "आयुष्मान देवदत्त, सारिपुत्त और महामोग्गल्लान पापेच्छ और बुरी नीयत वाले हैं। इन पर तनिक भी विश्वास न करें।"

"नहीं आयुष्मान, ऐसा न कहो। उनका स्वागत है, क्योंकि मुझमें और मेरे धर्म में उनकी श्रद्धा है।" ऐसा कहकर देवदत्त ने अपने आसन के आधे भाग पर बैठने हेतु सारिपुत्त को आमंत्रित किया, "आवुस सारिपुत्त, यहां आओ।" पर आयुष्मान सारिपुत्त दूसरा आसन लेकर एक ओर बैठ गये। आयुष्मान महामोग्गल्लान भी एक ओर अलग आसन लेकर बैठ गये।

बहुत रात तक देवदत्त भिक्षुओं को धर्मोपदेश करता रहा। फिर शास्ता की नकल करते हुए आयुष्मान सारिपुत्त से कहा, "आवुस, इस समय भिक्षु आलस्य और प्रमाद रहित हैं। तुम भिक्षुओं को धर्मदशना करो। मेरी पीठ दुख रही है। मैं अब आराम करूंगा।"

तब देवदत्त चौंपती संघाटी को बिछवाकर दाहिनी बगल से लेट गया। स्मृति-रहित, संप्रज्ञानरहित होने से उसे मुहूर्तभर में ही निद्रा आ गयी। तब आयुष्मान सारिपुत्त ने आदेशना एवं अनुशासनीय प्रातिहार्यों के साथ और आयुष्मान महामोग्गल्लान ने ऋद्धि-प्रातिहार्य के साथ भिक्षुओं को धर्मोपदेश किया। उनकी देशना से सभी भिक्षुओं को विरज-विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ – जो कुछ समुदयधर्मा (उत्पन्न होने वाला) है, वह निरोधधर्मा (विनष्ट होने वाला) है। आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित किया – "आवुसो! चलो भगवान के पास चलें। जिसे भगवान का धर्म पसंद हो, वह हमारे साथ चले।" इस पर सभी पांच सौ भिक्षु स्थविर सारिपुत्त और महामोग्गल्लान के साथ भगवान के पास वेळुवन की ओर चल पड़े।

भिक्षु कोकालिक ने देवदत्त को उठाया – "आवुस! देवदत्त! उठो, मैंने कहा था न कि सारिपुत्त, मोग्गल्लान का विश्वास मत करो।" तब देवदत्त को वहीं मुख से गर्म खून निकल पड़ा। उधर आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महामोग्गल्लान पांच सौ भिक्षुओं के साथ भगवान के पास जा पहुँचे। उन्होंने भगवान से निवेदन किया, "भंते, यहां संघ से फूटकर जाने वाले इन भिक्षुओं को पुनः उपसंपदा देने की अनुकंपा करें।"

"नहीं सारिपुत्त, पहले ये अपने अपराध के लिए क्षमायाचना करें।" फिर भगवान के पूछने पर अग्रश्रावकों ने यह बताया कि किस प्रकार उन्होंने भिक्षुओं को पापेच्छ देवदत्त के चंगुल से छुड़ाया।

दुर्मुख कोकालिक

भगवान के शिष्यों में कुछ ऐसे भी थे जो अग्रश्रावकों के प्रति ईर्ष्या और द्वेषभाव रखते थे। इनमें से कोकालिक नामक भिक्षु एक था।

एक बार कोकालिक भिक्षु भगवान के पास आया और उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। तब उसने भगवान से कहा – "भंते, सारिपुत्त और महामोग्गल्लान महापापेच्छ हैं, पाप-पूर्ण इच्छाओं के वशीभूत हैं।"

इस पर भगवान ने उसे कहा – "कोकालिक, ऐसा नहीं कहते। मन में भी ऐसा विचार न लाओ। सारिपुत्त और मोग्गल्लान के प्रति अपने मन में श्रद्धा लाओ। सारिपुत्त और मोग्गल्लान बड़े अच्छे हैं।"

दूसरी बार भी कोकालिक भिक्षु ने भगवान को कहा – "भंते! भगवान के प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा और बड़ा विश्वास है। पर सारिपुत्त और महामोग्गल्लान पापेच्छ हैं, पाप-पूर्ण इच्छाओं के वशीभूत हैं।"

दूसरी बार भी भगवान ने उसे कहा – "कोकालिक, ऐसा नहीं कहते। मन में भी ऐसा विचार न लाओ। सारिपुत्त और मोग्गल्लान के प्रति अपने मन में श्रद्धा लाओ। सारिपुत्त और मोग्गल्लान बड़े अच्छे हैं।"

भगवान के सामने उसने तीन बार अग्रश्रावकों पर दोषारोपण किया। भगवान ने उसे तीनों बार मना किया और समझाया। फिर उसने आसन छोड़ तथागत को प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा की और वहां से चला गया।

वहां से आने के बाद ही, कोकालिक भिक्षु के शरीर पर सरसों के बराबर फोड़े उठ आये। धीरे-धीरे वे बढ़ने लगे। सरसों से मूंग, मूंग से मटर, मटर से बेर, बेर से आंवला और फिर आंवला से बेल के बराबर होते चले गये। वे धीरे-धीरे फूटने लगे। उनसे पीब और लहू की धार बहने लगी। अत्यंत पीड़ा के कारण वह कराह भी नहीं पा रहा था। इसी रोग से शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गयी।

अग्रश्रावकों के प्रति अपने मन में पापपूर्ण विचार भरे रहने के कारण मर कर वह पदुम नामक नरक में पैदा हुआ।

आयुष्मान सारिपुत्त का भिक्षु परिवार

भगवान के महान भिक्षु संघ में उनके दोनों अग्रश्रावकों के पांच-पांच सौ भिक्षु-समूह थे। ये भिक्षु-समूह अग्रश्रावकों के भिक्षु परिवार के रूप में जाने जाते थे। भगवान जब स्वयं चारिका पर नहीं जाते तब इन अग्रश्रावकों को ही भेजते। ये लोग अपने पांच-पांच सौ भिक्षु-परिवार के साथ चारिका पर निकलते। ये भिक्षु अग्रश्रावकों द्वारा प्रायः प्रव्रजित या दीक्षित होते, अर्थात अग्रश्रावक इनके उपाध्याय या आचार्य होते। आयुष्मान सारिपुत्त के परिवार के प्रमुख भिक्षु थे उपसेन, खदिरवनिय रेवत, चुन्द, तिस्स, नन्द, पण्डित, राध, राहुल, संकिच्च, सीवलि इत्यादि। ये भिक्षु अपने सद्गुणों तथा विशेषताओं के कारण संघ में विशेष स्थान रखते थे। इनमें से अधिकतर महाश्रावकों की श्रेणी में थे। विशिष्ट सद्गुणों और विशेषताओं से संपन्न थे।

शिक्षाकामी राहुल

एक बार भगवान आळवी नगर के अग्गाळव चैत्य में विहार करते थे। राहुल भद्र भी वहीं साथ थे। श्रामणेर राहुल, आयुष्मान सारिपुत्त के शिष्य थे। कपिलवस्तु में भगवान के आदेश पर आयुष्मान सारिपुत्त ने उन्हें सात वर्ष की अवस्था में प्रव्रजित किया था। आयुष्मान मोग्गल्लान उनके आचार्य थे। श्रामणेर राहुल विनम्र और अनुशासनप्रिय थे। उनकी अनुशासनप्रियता की परीक्षा लेने के लिए कुछ भिक्षु उनको आते देखकर कूड़ा-कर्कट फैला देते। 'यह किसने किया' ऐसा पूछने पर वे आयुष्मान राहुल का नाम लगा देते। ऐसे अवसरों पर बिना उत्तर-प्रत्युत्तर किये आयुष्मान राहुल झाड़ू लेकर स्वयं उसे साफ कर देते।

अग्गाळव चैत्य में उपासक और भिक्षु रात में धर्म श्रवण करते। धर्म-देशना समाप्त होने पर भिक्षु अपने-अपने शयन-स्थल पर चले जाते। श्रामणेर राहुल वहीं दानशाला में उपासकों के साथ या किसी भिक्षु के साथ सो जाते। बाल भिक्षुओं के सोने से स्थविरों और उपासकों को कुछ कठिनाइयां

होने लगीं। उन्होंने इस संबंध में भगवान से निवेदन किया। भगवान ने नियम बनाकर बालभिक्षुओं का वहां सोना बंद कर दिया और स्वयं कोसम्बी चले गये। भगवान के प्रति गौरवभाव होने और आयुष्मान राहुल के सरल, मृदु, विनम्र स्वभाव के कारण भिक्षु उनके प्रति स्नेह और सद्भाव रखते थे। उन्हें अपने साथ चारपाई, बिछावन आदि की व्यवस्था करके सुलाते। पर, शास्ता द्वारा शिक्षापद घोषित किये जाने के बाद सुलाने की बात कौन कहे, किसी ने निवास-स्थान भी नहीं दिया। आयुष्मान राहुल भी अपने पिता बुद्ध अथवा चाचा स्थविर आनन्द, उपाध्याय आयुष्मान सारिपुत्त अथवा आचार्य आयुष्मान महामोग्गल्लान में से किसी के पास नहीं गये। उनके मन में भी भगवान के नियम के प्रति भिक्षुओं जैसा ही गौरवभाव था। वह भगवान द्वारा प्रयुक्त शौचालय का ही सोने के लिए उपयोग करते।

कोसम्बी से लौटने पर भगवान भोर में ही शौचालय गये। दरवाजे पर खांसा। उधर आयुष्मान राहुल ने भी खांसा।

भगवान ने पूछा – "यह कौन है?"

"भंते! मैं राहुल हूं," कहते हुये निकलकर भगवान की वंदना की।

"यहां क्यों हो?" पूछे जाने पर आयुष्मान राहुल ने सब कुछ बताया।

श्रामणेर राहुल के साथ ऐसी उदासीनता और लापरवाही देखकर शास्ता के अंदर धर्म-संवेग जागा। उन्होंने प्रातः भिक्षुओं को एकत्र किया। धर्मसेनापति से पूछा – "सारिपुत्त! तुम्हें मालूम है कि रात में राहुल कहां रहा?"

"भंते! नहीं मालूम है।"

शास्ता बोले – "आज शौचालय में रहा।"

"सारिपुत्त! तुम श्रामणेर को इस प्रकार छोड़कर अन्य बालकों को प्रव्रजित करके क्या करोगे? ऐसा हाल रहने पर यहां कौन प्रव्रजित होगा? अब से बालकों को प्रव्रजित करके एक-दो दिन अपने साथ रख तीसरे दिन उनके लिए निवास की व्यवस्था हो।" इस प्रकार भगवान ने संशोधित शिक्षापद की घोषणा की।

संध्या समय धर्मसभा में भिक्षु आयुष्मान राहुल की अनुशासनप्रियता की प्रशंसा कर रहे थे। भगवान ने पूछा – "भिक्षुओ! क्या बात है?" "भंते! अमुक बात है।"

तब भगवान ने कहा – "भिक्षुओ! अभी ही नहीं अपने पूर्वजन्म पशुयोनि में भी राहुल अनुशासनप्रिय था।" ऐसा कहते हुये शास्ता ने अतीत काल की कथा संघ को सुनायी।

भगवान ने शिक्षाकामियों में राहुल को अग्र स्थान पर प्रतिष्ठित किया।

आरण्यक खदिरवनिय रेवत

आयुष्मान रेवत, धर्मसेनापति के सात भाई-बहनों में सबसे छोटे थे। आयुष्मान सारिपुत्त अपार धन-संपदा का त्याग करके प्रव्रजित हो गये थे। कालांतर में उनकी तीन बहनों (चाला, उपचाला, सिसूपचाला) और दो भाइयों (चुन्द, उपसेन) ने उनके प्रभाव में आकर प्रव्रज्या ले ली। इस तरह वङ्गन्त और रूपसारी की कुल सात संतानों में मात्र एक पुत्र घर पर रह गया। उसकी अवस्था सात वर्ष की थी। अपने बड़े भाई-बहनों को प्रव्रजित हुआ जानकर बालक रेवत की भी रुचि धन-संपत्ति में नहीं रहती। वह सोचता कि जिस वैभव को उगलकर (त्यागकर) उसके अग्रज चले गये, उसे निगलना (ग्रहण करना) उचित नहीं। उधर मां के मन में यह डर लगा रहता कि कहीं भाई-बहनों के प्रभाव में आकर रेवत ने भी प्रव्रज्या ले ली तो उसका कुलवंश समाप्त हो जायगा। इसलिए सात वर्ष की अवस्था में ही मां ने पुत्र का विवाह करने की सोची। माता ने पुत्र की सजातीय कन्या के साथ सगाई कर विवाह का दिन निश्चित कराया।

विवाह में मंगलाचरण के समय लड़की को यह आशीर्वाद दिया जा रहा था कि वह अपनी दादी की आयु प्राप्त करे। कुमार रेवत ने पूछा – "कौन है इसकी दादी?" लोगों ने एक वृद्धा को दिखाया जिसकी आयु एक सौ बीस वर्ष की थी। मुँह पोपला, एक भी दांत नहीं, बाल श्वेत, सारे शरीर पर झुर्रियां, हड्डियां कंकड़ों की तरह उभरी हुई और कमर झुकी। बालक रेवत ने उस कन्या के बारे में सोचा, "क्या ऐसा सुंदर रूप भी बुढ़ापे के कारण एक दिन जर्जरित हो जायगा? अवश्य ही मेरे भाइयों ने यही सब देख-सुन कर प्रव्रज्या ले ली होगी। मुझे भी कुछ करना होगा।"

जब बारात लौट रही थी, तब रेवत शौच का बहाना करके झाड़ियों की आड़ में गया। उसी बहाने काफी दूर निकल गया। देर होने पर रिश्तेदारों ने उसे पुकारना शुरू किया। किसी प्रकार का उत्तर न मिलने पर उन लोगों ने उसे खोजना प्रारंभ किया, पर कहीं अता-पता नहीं चला। लाचार और निराश होकर वे लोग अपने गांव चले आये। बालक रेवत भागकर एक ऐसे प्रदेश में पहुँचा जहां तीस भिक्षु रहते थे। उनकी वंदना करके कुमार ने उनसे प्रव्रज्या पाने का निवेदन किया, पर कुमार की अल्पायु और अलंकारों से सुसज्जित वेश-भूषा को देखकर तथा उसके परिचय के अभाव में भिक्षुओं ने प्रव्रज्या देने से इंकार कर दिया। तब रेवत ने उन्हें बताया – "भंते! मैं भिक्षु उपतिस्स का छोटा भाई हूं।"

"उपतिस्स कौन?"

"भंते! भदंत लोग मेरे भाई को सारिपुत्त नाम से जानते हैं।"

इतना सुनते ही भिक्षु प्रव्रज्या देने को तैयार हो गये। क्योंकि, आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं से पहले ही कह रखा था, "यदि मेरा छोटा भाई रेवत प्रव्रज्या लेने आये, तो उसे अवश्य प्रव्रजित करें। मेरे माता-पिता मिथ्यादृष्टिक हैं। उनसे क्या पूछना! मैं ही उसका माता-पिता हूं।" भिक्षुओं ने उसके वस्त्र बदले और उसे प्रव्रजित करके स्थविर सारिपुत्त को संदेश भेज दिया।

श्रामणेर रेवत ने सोचा कि यहां रुकने पर उनके रिश्तेदार खोजते हुए पहुँच सकते हैं, इसलिए वह तीस योजन दूर एक वन में चले गये। वह खदिर (बबूल) वन के नाम से जाना जाता था। इसी वन में विहार और तपस्या करने के कारण आगे चलकर उनके नाम के पहले खदिरवनिय जोड़ दिया गया। कालांतर में वे खदिरवनिय रेवत के नाम से विख्यात हुये।

खदिरवन में रहकर आयुष्मान रेवत ने परिश्रमपूर्वक तपते हुये मीमांसापूर्ण ज्ञान के साथ अर्हत्व अवस्था प्राप्त कर ली। उसके बाद वे भगवान के दर्शन के लिए सावत्थी आये। वहां कुछ दिनों तक बड़े भाई स्थविर सारिपुत्त के साथ विहार करते रहे। वहां से लौटते समय उन्होंने भगवान और धर्मसेनापति को खदिरवन आने के लिए आमंत्रित किया। जंगल, झाड़ और हिंसक प्राणियों से भरे होने के कारण वन के लिए मार्ग बड़ा दुरूह था। इसलिए, भगवान ने आयुष्मान सीवलि को साथ ले लिया। सीवलि ने अपने ऋद्धिबल से मार्ग को एकदम साफ-सुथरा और सुगम बना दिया। उससे संघ-सहित भगवान आराम के साथ वहां पहुँच सके। वन में रेवत ने अपने प्रताप से भगवान के लिए गंधकुटी, पांच सौ कूटागार, पांच सौ दिन के लिए पांच सौ रात के लिए भिक्षु-निवास, चंक्रमण आदि बनवा रखा था। उनके प्रबंध, स्वागत, अभिनंदन से भगवान अत्यंत प्रसन्न थे। एक माह पश्चात वे अपने भिक्षुसंघ के साथ सावत्थी लौट आये।

आयुष्मान रेवत प्रायः खदिरवन में ही साधना करते थे। एक बार सावत्थी में भगवान के सामने खदिरवन के झाड़-झंखाड़, कांट-कूड़ा, दुर्गमता, भीषणता की चर्चा चली तो अर्हत खदिरवनिय के तप का प्रभाव व्यक्त करने के लिए शास्ता ने यह गाथा कही;

> **"गामे वा यदि वारञ्ञे, निन्ने वा यदि वा थले।**
> **यत्थ अरहन्तो विहरन्ति, तं भूमि रामणेय्यकं॥"**
>
> *– धम्मपद ९८, अरहन्तवग्ग*

[गांव हो या जंगल, भूमि नीची हो या (ऊंची), जहां (कहीं) अर्हत विहार करते हैं, वह भूमि रमणीय होती है।]

> *ऊंची-नीची भू हो, अथवा जंगल हो या गांव।*
> *अर्हत जहां विहरते, होती कल्पतरु की छांव॥*

आयुष्मान रेवत की गणना अस्सी महाश्रावकों में की गयी है। उनके आरण्यवास में प्रसन्न होकर भगवान ने उन्हें आरण्यकों में अग्र स्थान पर प्रतिष्ठित किया था।

प्रत्युत्पन्नमति राध

मगध की राजधानी राजगह के पास ब्राह्मणों का एक ग्राम था। उसमें राध नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वृद्धावस्था में परिवार द्वारा उसकी उपेक्षा होने लगी। वह दुःखी रहने लगा। उसके मन में वैराग्य जागा। प्रव्रजित होने की इच्छा हुई। पर किसी भिक्षु ने उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। सभी उसकी उपेक्षा ही करते रहे। दिनोंदिन उसका दुःख बढ़ता ही गया। वह दुर्बल, दुर्वर्ण और कृशकाय होने लगा।

एक दिन भगवान की दृष्टि उस पर पड़ी। अस्थि-पंजर मात्र राध पर भगवान को करुणा जागी। उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित किया– 'भिक्षुओ! इस ब्राह्मण का उपकार किसी को याद है?'

आयुष्मान सारिपुत्त ने स्वयं स्वीकारते हुये कहा – "भंते! मैं इसका उपकार स्मरण करता हूं।"

'सारिपुत्त! तुम क्या उपकार स्मरण करते हो?' "भंते! मैं राजगृह में भिक्षाचार कर रहा था, इसने मुझे एक कलछी भात दिलवाया था।"

'साधु! सारिपुत्त! साधु! सत्पुरुष अपने प्रति किये गये उपकार को नहीं भूलता। तो, सारिपुत्त! तुम इस ब्राह्मण को प्रव्रजित करो, उपसंपदा दो।'

आयुष्मान सारिपुत्त को आश्चर्य हुआ, "भंते! किस प्रकार इस ब्राह्मण को प्रव्रजित करूं?"

भगवान ने धर्म-संबंधी कथा कहते हुए भिक्षुओं को संबोधित किया – 'भिक्षुओ! मैंने जो त्रिशरण गमन द्वारा उपसंपदा की अनुज्ञा की थी, उसे आज से निरस्त करता हूं। आज से चार ज्ञप्ति कर्म द्वारा उपसंपदा की अनुमति देता हूं।'

भिक्षुसंघ की जिज्ञासा पर भगवान ने उपसंपदा देने की नयी विधि बतायी;

'भंते संघ! मेरी बात सुने। मेरा अमुक नाम है। मैं अमुक नाम के आयुष्मान का उपसंपदापेक्षी हूं। यदि संघ उचित समझे, तो अमुक नाम को अमुक नाम के उपाध्यायत्व में उपसंपन्न करे।'

शास्ता ने इसी ज्ञप्ति को तीन बार दुहराने के लिए कहा। इसे सुनकर यदि संघ मौन रह जाय और कोई विरोध में न बोले, तो संघ की अनुमति जानकर उसे उपसंपदा दे दी जाय।

उक्त विधि से आयुष्मान सारिपुत्त ने ब्राह्मण राध को उपसंपदा दी। राध इस विधि से उपसंपन्न होने वाला प्रथम भिक्षु था। विपस्सना-भावना में निरंतर लगा हुआ ब्राह्मण अर्हत हुआ। उसका कल्याण हुआ, मंगल हुआ!

भगवान ने हाजिरजवाबी वक्ताओं (पटिभानेय्यकों) में आयुष्मान राध को अग्र स्थान पर प्रतिष्ठित किया।

सुमापी उपसेन

आयुष्मान उपसेन, धर्मसेनापति सारिपुत्त के अनुज थे। अग्रज का अनुसरण कर वे भी प्रव्रजित हुये। साधना में आगे बढ़ते गये और उन्होंने उच्च अवस्था प्राप्त की। भगवान ने इनकी गणना महाश्रावकों में की है।

एक समय आयुष्मान उपसेन अपने ज्येष्ठ भ्राता आयुष्मान सारिपुत्त के साथ सीतवन के सप्पसोण्डिकपब्भार (सर्पाकार पर्वत गुफा) में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान उपसेन को एक सर्प ने डँस लिया। सहभिक्षुओं को बुलाकर कहा – 'आयुष्मानो! मुझे विषधर ने डँस लिया है। अब, इस शरीर को चारपाई पर लिटाकर गुफा के बाहर ले चलो। यह शरीर भूसे की राशि की तरह बिखर जायगा।'

आयुष्मान सारिपुत्त आयुष्मान उपसेन से बोले – "हमलोग आयुष्मान उपसेन के शरीर को विकल या इंद्रियों को विपरिणत होते नहीं देख रहे हैं।" अर्थात् आयुष्मान उपसेन के शरीर और इंद्रियों पर सर्पदंश का कोई प्रभाव पड़ता नहीं दिख रहा है।

आयुष्मान उपसेन बोले– 'आयुष्मान सारिपुत्त! जो यह सोचता है, 'मैं चक्षु हूं', 'चक्षु मेरा है'.....'मैं मन हूं', 'मन मेरा है', उसका शरीर विकल होता है या इंद्रियां विपरिणत होती हैं। आवुसो! इस शरीर को चारपाई पर लिटाकर बाहर ले चलो। आयुष्मान सारिपुत्त! मुझे ऐसा नहीं होता है, 'मैं चक्षु हूं', 'चक्षु मेरा है'.....'मैं मन हूं', 'मन मेरा है', तो मेरा शरीर विकल कैसे होगा और इंद्रियां विपरिणत कैसे होंगी?"

भिक्षुओं ने आयुष्मान उपसेन के शरीर को चारपाई पर लिटाकर बाहर लाये। तब तक सारे शरीर में विष फैल चुका था। कुछ ही क्षणों में वह सचमुच भूसे की तरह बिखर गया।

आयुष्मान उपसेन ने लंबे समय से अपने अहंकार, ममकार, अभिमान को इस सीमा तक जड़ से उखाड़ दिया था कि उन्हें ऐसा लगता ही न था कि अमुक इंद्रिय मैं हूं, या मेरी है। इसीलिए सांप से डँसे जाने के पश्चात प्राणांत होते ही उनका शरीर मुट्ठी-भर भूसे के समान बिखर गया।

–संयुत्तनिकाय (२.४.६९), उपसेनआसीविससुत्त

अपने मृदुभाषी और मधुर स्वभाव के कारण आयुष्मान उपसेन सहभिक्षुओं में बड़े ही प्रिय थे। भगवान ने वङ्गन्त-पुत्र उपसेन को सम्प्रसादिकों (सबको प्रसन्न करने वालों) में अग्र स्थान पर प्रतिष्ठित किया था।

अर्हत संकिच्च

श्रामणेर संकिच्च जब मां के गर्भ में था, तभी उसकी मां बीमार पड़ी और मर गयी। उसके रिश्तेदारों ने उसे श्मशान ले जाकर गर्भ-सहित उसका दाह-संस्कार कर दिया। आश्चर्य! मां के शव के जल जाने के बावजूद शिशु संकिच्च जीवित रह गया। क्यों? क्योंकि जिसका अंतिम जन्म रहता है, वह बिना अर्हत्व प्राप्त किये शरीर नहीं छोड़ सकता। प्रसन्नचित्त उसके रिश्तेदार उसे श्मशान से उठाकर घर ले आये। उसके जीवित बचे रहने के चमत्कार पर ज्योतिषियों ने बताया– "यदि बालक गृहस्थ होगा, तो इसके सात पीढ़ियों तक के रिश्तेदार गरीब और दरिद्र होंगे। यदि प्रव्रजित होगा, तो पांच सौ श्रमणों से घिरा रहेगा।"

बड़ा होने पर संकिच्च को जब अपने जन्म की घटना मालूम हुई तब संसार भव से मुक्त होने के लिए उसने प्रव्रज्या लेने का निश्चय किया। इस संबंध में रिश्तेदारों ने भी उसकी मदद की। सात वर्ष की अवस्था में संकिच्च को आयुष्मान सारिपुत्त ने प्रव्रजित किया। बाल मुँडवाते समय ही अपने पूर्व-जन्मों के प्रभूत पुण्य के फलस्वरूप संकिच्च ने मीमांसापूर्ण ज्ञान के साथ अर्हत्व प्राप्त कर लिया। फिर वह धर्मसेनापति के साथ रहने लगा।

एक बार जब भगवान जेतवनाराम में विहार करते थे, तब तीस भिक्षु कर्मस्थान लेने के लिए उनके पास आये। आलंबन प्राप्त कर जब वे वन में जाने लगे, तब भावी संकट को जानकर भगवान ने उनसे कहा, कि वे स्थविर सारिपुत्त से मिलते हुये जायें। भगवान का आशय समझकर आयुष्मान सारिपुत्त ने संकिच्च थेर को उन भिक्षुओं के साथ भेज दिया। संकिच्च-सहित सभी भिक्षु वन में साधनारत हो गये। उन सभी ने वर्षावास की अवधि में मौन रहने का तय किया। साथ ही यह भी तय किया कि बीमारी आदि की अवस्था में भिक्षु घंटी बजायेंगे जिससे कि हम सब उसके उपचार हेतु एकत्रित होंगे।

एक दिन वे सभी भिक्षु भोजन कर रहे थे। तभी बहुत दूर से यात्रा करता हुआ एक थका-मांदा, भूख-प्यास से पीड़ित गृहस्थ उनके समीप आकर खड़ा हो गया। भिक्षुओं ने उसे खाने के लिए भोजन दिया। उस गृहस्थ ने उन भिक्षुओं के साथ ठहरने का निश्चय किया। दो माह पश्चात अपनी बेटी से मिलने के लिए वह बिना किसी को कुछ बताये वहां से चला गया। रास्ते में कुछ डाकुओं ने उसे पकड़ लिया। वे अपने देवता की प्रसन्नता हेतु उस गृहस्थ की बलि चढ़ाना चाहते थे। उस गृहस्थ ने उन डाकुओं को आश्वस्त किया कि वह उससे भी अच्छा शीलवान, ध्यानी व्यक्ति इस कार्य के लिए उपलब्ध करायगा। वह गृहस्थ उन डाकुओं को लेकर उन पांच सौ भिक्षुओं के पास पहुँचा। उसने घंटी बजायी। सभी भिक्षु एकत्र हो गये।

डाकुओं ने अपनी मंशा को उन भिक्षुओं के समक्ष प्रकट किया। ज्येष्ठतम भिक्षु उनके साथ जाने के लिए तैयार हो गया, पर संकिच्च थेर ने उन्हें मना करते हुये कहा– "भंते! सम्यक्-संबुद्ध ने जिस संकट को पहले ही देखकर आप लोगों को मेरे उपाध्याय के पास भेजा था उसे ही जानकर मेरे उपाध्याय ने मुझे यहां भेजा है। इसलिए, कृपया मुझे जाने दें। आप सभी अपनी साधना में जुटे रहें।"

संकिच्च थेर डाकुओं के साथ चले। हृदय पर पत्थर रखकर श्रमणों ने उन्हें विदा किया। अपने स्थान पर पहुँचकर डाकुओं ने बलि चढ़ाने की तैयारी शुरू की। नहला-धुला और माला-फूल पहनाकर संकिच्च को देवता के सम्मुख बैठाया। ज्येष्ठ डाकू तलवार लेकर आया। थेर समाधिस्थ हो गये। डाकू ने उनके ऊपर तलवार से वार किया। तलवार टेढ़ी हो गयी। थेर का बाल तक बांका नहीं हुआ। यह चमत्कार देखकर डाकुओं का सरदार तलवार फेंककर थेर के चरणों में गिर पड़ा, बोला – "भंते! हमें देखकर राहगीर भय के कारण रोने-कांपने लगते हैं, पर आप एकदम निडर और निश्चिंत बैठे हैं। आपका मुख-मंडल सोने की तरह कांतिमान हो रहा है।"

ध्यान से उठकर श्रामणेर ने उन्हें धर्म-देशना देते हुये कहा – "हे ग्रामीणो! क्षीणास्रव व्यक्ति में आत्म-भाव न होने से, उसे भय और विनाश की चिंता नहीं होती। जिसने सत्य का साक्षात्कार कर लिया, उसे न जीने की कामना होती है और न मरने की इच्छा। अब तुमलोग क्या करोगे?"

"भंते! ऐसा चमत्कार देखने के बाद, हमें अब अपने कर्मों पर लज्जा आती है। आप हमें भगवान के पास ले चलें। हम भी उनसे प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे।"

तब संकिच्च ने उन पांच सौ डाकुओं को भिक्षु वेश-भूषा पहनाकर शील में प्रतिष्ठित किया। फिर तीस श्रमणों से मिलते हुये अपने उपाध्याय आयुष्मान सारिपुत्त के पास गये। स्थविर के पूछने पर श्रामणेर ने सब कुछ बता दिया। प्रसन्न-मन साधुवाद देते हुये स्थविर ने उन्हें शास्ता के पास भेज दिया। शास्ता का अभिवादन करके आयुष्मान संकिच्च ने उन्हें सब कुछ विधिवत कह सुनाया।

भगवान ने पांच सौ भिक्षुओं से पूछा – "भिक्षुओ! क्या यह सब सच है?"

"हां भंते! सब सच है।"

श्रामणेर की प्रशंसा करते हुये भगवान ने नये भिक्षुओं से कहा – "भिक्षुओ! चौर-कर्म में लिप्त तुम्हारे सौ वर्ष के दुश्शील जीवन से शील में प्रतिष्ठित एक दिन का जीवन श्रेष्ठतर है।" ऐसा कहते हुये शास्ता ने यह गाथा कही :

यो च वस्ससतं जीवे, दुस्सीलो असमाहितो।
एकाहं जीवितं सेय्यो, सीलवन्तस्स झायिनो॥

–धम्मपद ११०, सहस्सवग्गो

[दुःशील और चित्त की एकाग्रतारहित (व्यक्ति) के सौ वर्ष के जीवन से शीलवान और ध्यानी (व्यक्ति) का एक दिन का जीवन श्रेयस्कर होता है।]

धर्मदेशना के अंत में पांच सौ भिक्षुओं ने मीमांसापूर्ण ज्ञान के साथ अर्हत्व प्राप्त किया।

वनवासी तिस्स

स्थविर सारिपुत्त के पिता का एक मित्र राजगृह में रहता था। कालक्रम में वह निर्धन और दरिद्र हो गया। एक दिन आयुष्मान सारिपुत्त भिक्षाटन करते हुये उसके द्वार पहुँचे। उस समय उसके पास स्थविर को देने के लिए कुछ नहीं था। इसलिए, अपनी निर्धनता पर तरस खाते हुए वह घर में ही छिपा रहा। एक दिन ब्राह्मण को एक थाली खीर और बहुमूल्य वस्त्र प्राप्त हुआ। प्रसन्नमन घर आकर वह स्थविर के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ ही देर बाद आयुष्मान सारिपुत्त ब्राह्मण के घर पहुँचे। ब्राह्मण ने भोजन और वस्त्र उन्हें

दान कर दिया। निर्धनता और असमर्थता की स्थिति में किया हुआ दान महान फलदायी होता है। कुछ दिनों बाद ब्राह्मण की मृत्यु हो गयी। अगले जन्म में वह स्थविर के उपासक कुल में पैदा हुआ।

बच्चे के नामकरण के दिन उसके शरीर से खिसककर एक बहुमूल्य कंबल स्थविर सारिपुत्त के चरणों पर गिर पड़ा। मां ने उसे पुत्र द्वारा दान किया हुआ कहकर बच्चे को धर्म सिखाने के लिए स्थविर से कहा। उस दिन बच्चे का नाम तिस्स रखा गया। आयुष्मान सारिपुत्त गृहस्थकाल में उपतिस्स नाम से जाने जाते थे। थेर के नाम के समान ही बच्चे का नाम रखा गया।

तिस्स के पूर्वजन्म से ही उस पर स्थविर का प्रभाव रहा। सात वर्ष की अवस्था में उसने स्थविर सारिपुत्त से प्रव्रज्या लेने की प्रार्थना की। मां ने अनुमति प्रदान कर दी। स्थविर सारिपुत्त ने उसे प्रव्रजित किया। उस दिन तिस्स के माता-पिता ने बुद्धप्रमुख भिक्षु-संघ को उत्तम भोजन और वस्त्र दान किया। श्रामणेर तिस्स आयुष्मान सारिपुत्त के साथ विहार करने लगा। अपने पुण्य के फलस्वरूप उसे पर्याप्त उत्तम भोजन और उत्तम कंबलों का दान प्राप्त होता, जिन्हें आदर और श्रद्धा सहित वह स्थविर भिक्षुओं को देता।

अपनी छोटी-सी अवस्था में ही उसने संघ को इतना प्रचुर भोजन और कंबल उपलब्ध कराया, कि भिक्षु लोग उसे 'पिण्डपातदायक तिस्स' और 'कंबलदायक तिस्स' कहने लगे। इस बात पर भगवान ने कहा – "भिक्षुओ! भिक्षुसंघ की महिमा ऐसी है कि इसे अल्प दिया हुआ दान प्रचुर होता है और प्रचुर दिया हुआ प्रचुरतर होता है।"

गंभीरतापूर्वक साधना करने के लिए तिस्स रिश्तेदारों की भीड़-भाड़ से बचना चाहते थे। इसलिए, उन्होंने भगवान की वंदना की और उनसे अर्हत्व-प्राप्ति का कर्मस्थान सीखा। अपने उपाध्याय का अभिवादन किया और दूर अरण्य में निकल गये। यहीं उन्होंने साधना प्रारंभ की। पार्श्ववर्ती गावों से भिक्षा मिलने लगी। वर्षावास समाप्त होते-होते मीमांसापूर्ण ज्ञान के साथ उन्होंने अर्हत्व की प्राप्ति की। लंबे समय तक अरण्य में गंभीर तप करते रहने के कारण भिक्षु उसे 'आरण्यक तिस्स' कहने लगे।

सावत्थी में पवारणा (एक धार्मिक संस्कार) के पश्चात तिस्स के उपाध्याय आयुष्मान सारिपुत्त, आयुष्मान मोग्गल्लान, आयुष्मान महाकस्सप आदि महाश्रावकों के साथ उनके पास आये। उपासकों ने सभी महाश्रावकों

और भिक्षुओं के निवास और भोजन की व्यवस्था की। एक दिन उपासकों ने स्थविर सारिपुत्त से कहा – 'भंते! हमें धर्म सुनाने की कृपा करें।' पूज्य श्रामणेर ने तो कभी व्याख्या के साथ धर्म नहीं सुनाया। तब आयुष्मान सारिपुत्त ने श्रामणेर को व्याख्यासहित धर्म सुनाने का निर्देश दिया। आयुष्मान तिस्स ने सविस्तार अर्हत्व-प्राप्ति और दुःख से मुक्ति का मार्ग बताया। धर्म की इतनी अच्छी व्याख्या सुनकर उपासक अति प्रसन्न हुए। पर, उनमें से कुछ इसलिए अप्रसन्न और असंतुष्ट हुये, कि ऐसा अच्छा धर्म उन्हें आज तक उन्होंने (श्रामणेर ने) क्यों नहीं सुनाया!

उषाकाल में लोकों का सर्वेक्षण करते हुये सम्यक-संबुद्ध ने देखा कि आरण्यक तिस्स से कुछ उपासक असंतुष्ट हो गये हैं। भगवान ने सोचा कि ऐसी स्थिति में तो उनका अहित हो जायगा। इसलिए उन पर अनुकंपा करते हुए भगवान सावत्थी से आरण्यक तिस्स के पास आये। अपने बीच में सम्यक-संबुद्ध को पाकर सभी उपासक अपना भाग्य सराहने लगे। उन्होंने भोजनदान की अति उत्तम व्यवस्था की। भोजनोपरांत भगवान ने अनुमोदन में कहा – "उपासको! तुम्हें लाभ हुआ, सुलभ हुआ, जो तुम्हारे आश्रित श्रामणेर के कारण तुम्हें बुद्ध-सहित अस्सी महाश्रावकों के दर्शन प्राप्त हुए।" भगवान के ऐसा कहने पर सभी उपासक यह सोचकर आनंदित हुए कि उनका हित हुआ। उस आनंद के फलस्वरूप, अनेक उपासक सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए। भगवान वहां से सावत्थी लौट आये।

सावत्थी में भिक्षुओं के बीच इस बात की चर्चा होती, कि श्रामणेर तिस्स जब तक विहार में रहा उत्तम और प्रचुर मात्रा में भोजन-वस्त्र प्राप्त करता जिसे स्थविर भिक्षुओं को भी देता। पर, सब लाभ-सत्कार त्यागकर वह अरण्य में कष्ट-पूर्वक तप रहा है। भिक्षुओं को बातें करते देखकर भगवान ने पूछा, "भिक्षुओ! किसके विषय में बातें हो रही हैं?"

"भंते! श्रामणेर तिस्स के तप के बारे में।"

तब भगवान भिक्षुओं को सचेत करते हुये बोले – "भिक्षुओ! लाभ प्राप्त करने का मार्ग दूसरा है और निर्वाण प्राप्त करने का मार्ग दूसरा है।" ऐसा कहते हुये यह गाथा कही :

"अञ्ञा ही लाभूपनिसा, अञ्ञा निब्बानगामिनी।
एवमेतं अभिञ्ञाय, भिक्खु बुद्धस्स सावको।
सक्कारं नाभिनन्देय्य विवेकमनुब्रूहये॥"

– धम्मपद ७५, बालवग्ग

[लाभ का मार्ग दूसरा है और निर्वाण की ओर ले जाने वाला दूसरा – इस प्रकार इसे भली प्रकार जान कर बुद्ध का श्रावक भिक्षु (आदर-) सत्कार की इच्छा न करे और (त्रिविध) विवेक (अर्थात काय विवेक, चित्त विवेक, उपधि विवेक) बढ़ाये, विकसित करे।]

लाभ-मार्ग है अन्य, अन्य निर्वाण मार्ग है।
तजो मान-सत्कार, गहो एकांत-मार्ग है।

सीवलि

कुमार सीवलि, कोलिय राजकुमारी सुप्पवासा का पुत्र था। वह सात वर्षों तक मां के गर्भ में पड़ा रहा। सीवलि के प्रसव के समय उसकी मां को असह्य पीड़ा हो रही थी। भगवान की मैत्री और करुणा धर्मभरी वाणी के फलस्वरूप मां ने बिना तनिक भी कष्ट के सीवलि को जन्म दिया।

जन्म के सातवें दिन शिशु को सजाकर मां शास्ता और संघ की वंदना कराने ले गयी। वंदना के पश्चात स्थविर सारिपुत्त के पास गयी। स्थविर ने पूछा – "क्यों बच्चे! सुख से तो हो?"

"भंते! मुझे सुख कहां? सात वर्षों तक लोह-कुम्भि (नरक) में पड़ा रहा।"

बच्चे को धर्मसेनापति से बातें करते देखकर मां सुप्पवासा का मन प्रीति-प्रमोद और श्रद्धा से भर उठा। बोली – "भंते! बच्चा क्या कह रहा है?"

"उपासिके! अपने लंबे दुःख के बारे में बता रहा है।"

भगवान ने भोजन-दान का अनुमोदन किया और कुटी के अंदर चले गये।

सीवलि की सात वर्ष की आयु में मां उसे भगवान के पास ले गयी। शास्ता के निर्देश पर स्थविर सारिपुत्त ने उसे प्रव्रज्या दी। अत्यंत श्रद्धा और

उद्योग के साथ वह तप में जुट गया। बीस वर्ष की आयु में उसे अर्हत्व प्राप्त हुआ। प्रथम पद-प्राप्ति पर सीवलि ने यह उदान कहा–

"जिस अर्थ के लिए मैंने कुटी में प्रवेश किया, वे पूरे हुए। मैंने विद्या तथा विमुक्ति की गवेषणा की और पूर्णरूपेण अहंकार को त्याग दिया।"

एक बार भगवान संघ के साथ श्रामणेर तिस्स के यहां अरण्य में जा रहे थे। मार्ग झाड़-झंखाड़ और कांटों से भरा था। भगवान के आदेश पर आयुष्मान सीवलि ने अपने ऋद्धि-बल से उसे साफ-सुथरा और सुगम बना दिया। यह सब जान-देख कर वहां का देवता अति प्रसन्न हुआ।

भगवान ने आयुष्मान सीवलि को लाभार्थियों में अग्र स्थान पर प्रतिष्ठित किया।

पण्डित श्रामणेर

अपने पूर्वजन्मों के पुण्य कर्मों के फलस्वरूप पण्डित श्रामणेर ने सावत्थी के एक श्रेष्ठिकुल में जन्म ग्रहण किया। वह कुल स्थविर सारिपुत्त का भक्त था। जब पण्डित माता के गर्भ में आया, तब श्रेष्ठी प्रायः स्थविर को अपने घर उनके पांच सौ भिक्षु परिवार सहित आमंत्रित करता। पण्डित की मां सबका पूरा स्वागत-सत्कार करती। उत्तम भोजन के साथ वस्त्रादि भी दान करती।

नामकरण संस्कार के दिन मां ने बच्चे का नाम पण्डित रखवाया, क्योंकि उसके गर्भ में आने के पश्चात परिवार में कोई अशिक्षित नहीं बचा। मां के निवेदन पर स्थविर सारिपुत्त ने पण्डित को सिक्खापद (शील-संबंधी नियम) सिखाया। पूरा परिवार आयुष्मान सारिपुत्त से इतना प्रभावित था कि जन्मदिन से ही मां ने सोच रखा था कि बड़े होने पर वह इसका इरादा नहीं तोड़ेगी, अर्थात यदि बालक संन्यास ग्रहण करना चाहेगा, तो वह नहीं रोकेगी। सात वर्ष की आयु होने पर पण्डित ने साधु होने की इच्छा प्रकट की। पूर्व निश्चय के अनुसार मां बालक को लेकर विहार गयी और स्थविर से निवेदन किया– "भंते! इस बालक को प्रव्रजित करें।" स्थविर ने बालक को प्रव्रजित जीवन की कठिनाइयां बतायीं।

"भंते! आपके आदेशानुसार सब करूंगा।"

तब स्थविर ने उसका मुंडन कराकर उसे प्रव्रजित किया। उस दिन श्रेष्ठि-परिवार ने बुद्धप्रमुख भिक्षु संघ को उत्तम भोजन-दान किया।

भिक्षुओं के साथ न जाकर श्रामणेर अपने उपाध्याय के साथ भिक्षाटन के लिए निकले। रास्ते में उन्होंने खेत सींचने के लिए नाली बनाते हुये देखा, आगे बढ़ने पर लोहे को गरम करके तीर बनाते हुये देखा, फिर लकड़ी छीलकर बढ़ई को चक्का बनाते हुये देखा। श्रामणेर द्वारा पूछे जाने पर इन तीनों कार्यों का अर्थ उसके उपाध्याय ने उसे समझाया। तब उसने सोचा, 'अचेतन जड़ वस्तुओं को वश में करके मनचाहे सामान बनाये जा सकते हैं, तो सचेत चित्त को वश में करके श्रमण धर्म का पालन क्यों नहीं किया जा सकता' - ऐसा सोचकर उसने स्थविर से प्रार्थना की, कि वह उसके लिए भिक्षा लेते आवें और श्रामणेर स्वयं विहार लौट आया। उसका निवेदन स्वीकार करते हुये स्थविर ने कमरे की चाभी उसे दे दी।

श्रामणेर का दृढ़ निश्चय देखकर सभी दैवी शक्तियां उसकी सहायता के लिए जुट गयीं। शास्ता ने विहार में रहकर दिव्य नेत्रों से यह सब देख लिया। भगवान यह भी जान गये कि सारिपुत्त के आने के पहले पण्डित प्रथम तीन मार्ग-फल (सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी) में तो प्रतिष्ठित हो जायगा, पर अर्हत्व में कुछ देर लगेगी। इसलिए, उसकी सहायता के लिए भगवान स्वयं उसके पास पहुँच गये। जब आयुष्मान सारिपुत्त अपने श्रामणेर के लिए भोजन लेकर आये तब शास्ता ने कुछ प्रश्नों का उत्तर पाने के बहाने उन्हें रोक लिया। उधर स्थविर शास्ता के प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे और इधर श्रामणेर मीमांसापूर्ण ज्ञान के साथ अर्हत्व फल में प्रतिष्ठित हो गया। यह जानकर शास्ता ने स्थविर से कहा, कि वह जाकर अपने श्रामणेर को भोजन दे। श्रामणेर का भिक्षापात्र उसकी ओर बढ़ाते हुये स्थविर ने कहा– "श्रामणेर! भोजन करो।"

उसने पूछा– "भंते! आप?"

"मैं प्राप्त कर चुका हूं।"

केवल सात वर्ष की आयु में प्रव्रज्या के आठवें दिन श्रामणेर ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। भिक्षुओं को इस बात पर आश्चर्य हो रहा था। अभी तो श्रामणेर भिक्षा के लिए गया था वह अर्हत्व फल में कैसे प्रतिष्ठित हो गया?

इस बात की चर्चा करते देखकर भगवान ने पूछा – "भिक्षुओ! क्या बात हो रही है?"

"भंते! अमुक बात।"

तब भगवान ने उन्हें समझाया कि तीन निमित्तों से प्रेरणा पाकर श्रामणेर ने अर्हत्व प्राप्त किया। ऐसा कहकर शास्ता ने यह गाथा कही :

"उदकञ्हि नयन्ति नेत्तिका, उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका, अत्तानं दमयन्ति पण्डिता॥"

– धम्मपद ८०, पण्डितवग्ग

[पानी ले जाने वाले (जिधर चाहते हैं, उधर ही से) पानी को ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाण को (तपा कर) सीधा करते हैं, बढ़ई लकड़ी को (अपनी रुचि के अनुसार) सीधा या बांका करते हैं, और पंडित (जन) अपना (ही) दमन करते हैं।]

कृषक यथारुचि जल ले जाता, तीर बनाता तीरंदाज।
बढ़ई काठ नवाता, अपने को दमते हैं पंडितराज॥

महाचुन्द

महाचुन्द, धर्मसेनापति सारिपुत्त के छोटे भाई और प्रमुख शिष्य थे। अपने पुण्यकर्मों के फलस्वरूप देवों और मानवों के बीच संसरण करते हुये मगध राष्ट्र के नाळकगाम में मां रूपसारी की कोख से पैदा हुये। वयस्क होने पर उन्होंने स्थविर सारिपुत्त से प्रव्रज्या ग्रहण की। उनके आश्रय में विपस्सना करते हुए शीघ्र ही षडभिज्ञ होकर अर्हत हुए। उनकी गणना भगवान के अस्सी महाश्रावकों में की जाती है।

जब आयुष्मान सारिपुत्त परिनिर्वाण के लिए अपने जन्मस्थान नाळकगाम जा रहे थे, तब आयुष्मान महाचुन्द पांच सौ भिक्षु परिवार सहित उनके साथ गये। स्थविर के परिनिर्वाण के पूर्व उन्हें अंतिम समय में आयुष्मान चुन्द ने उठाकर बैठाया। तब धर्मसेनापति ने भिक्षुओं को संबोधित किया। धर्मसेनापति के दाह-संस्कार के पश्चात उनकी धातु और पात्र-चीवर लेकर आयुष्मान चुन्द ही सावत्थी आये। वहां आयुष्मान आनन्द को साथ लेकर स्थविर के परिनिर्वाण का समाचार देने वे भगवान के पास गये।

सारिपुत्त की बहनें

आयुष्मान सारिपुत्त के तीन छोटे भाई (चुन्द, रेवत, उपसेन) थे और तीन छोटी बहनें (चाला, उपचाला, सिसूपचाला)। एक दिन बहनों के मन में धर्म-संवेग जागा, कि जिस धर्म को उनके ज्येष्ठ भ्राता ने ग्रहण किया है वह सचमुच महान है। फिर, घर-परिवार त्यागकर उत्साह के साथ तीनों ने धर्मसेनापति से प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। प्रयत्नपूर्वक विपस्सना करते हुये तीनों अर्हत होकर निर्वाण-सुख में विहरती रहीं।

कुमापुत्त नन्द

अवन्ति राष्ट्र के वेळुकण्ड नगर में आयुष्मान नन्द का जन्म हुआ था। उसकी माता का नाम कुमा था, इसलिए वह कुमापुत्त नाम से विख्यात हुआ। एक दिन उसने धर्मसेनापति सारिपुत्त से धर्म सुना। उससे प्रभावित होकर प्रव्रजित हो गया। वहीं पहाड़ के पार्श्व में उसने धर्माचरण प्रारंभ किया। प्रयत्नपूर्वक विपस्सना बढ़ाकर अर्हत्व की प्राप्ति की।

महावच्छ

वयस्क होने पर आयुष्मान महावच्छ आयुष्मान सारिपुत्त के श्रावक हुए। उनसे धर्मदेशना प्राप्तकर उन्हें लगा कि 'आयुष्मान सारिपुत्त महाप्राज्ञ हैं।' उन्हें भगवान और उनके धर्म में श्रद्धा उत्पन्न हुई। वह शास्ता से प्रव्रजित हुए। भगवान से कर्मस्थान प्राप्त कर प्रयत्नपूर्वक तपते हुए उन्होंने शीघ्र ही अर्हत्व की प्राप्ति की।

गुणों का भंडार

अनुकरणीय आदर्श

एक समय भगवान सावत्थी के जेतवनाराम में विहार करते थे। श्रावकों की परिषद में शास्ता ने धर्मोपदेश देते हुए यह प्रज्ञप्त किया –

"यदि तुम घर से बेघर हो जाओ तो वैसा ही बनना जैसे सारिपुत्त और मोग्गल्लान।

मेरे भिक्षु श्रावकों में यही दो आदर्श माने जाते हैं।"

ऐसे कहते भगवान

वर्षावास के बाद पवारणा (वर्षावास के बाद होने वाला एक संस्कार) करके भिक्षु शास्ता के पास जाते। वर्षावास में किये हुए अपने तप, साधना आदि के बारे में वे भगवान को बताते। वे कहते, "आपके पास कर्मस्थान लेकर मैंने सोतापत्ति-फल की प्राप्ति की, कोई कहता मैं अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ ...." इस प्रकार अपने द्वारा अर्जित गुणों के बारे में वे भगवान को अवगत कराते। भगवान से मिलकर जाने वाले भिक्षुओं को शास्ता अग्रश्रावकों के पास भेजते। उनसे कहते, "भिक्षुओ, सारिपुत्त और मोग्गल्लान से अनुमति ले लो।"

भिक्षु बोलते, "भंते, क्यों हमलोग सारिपुत्त और महामोग्गल्लान से अनुमति लेंगे?"

पर भगवान उन दोनों अग्रश्रावकों के दर्शन के लिए भिक्षुओं को प्रेरित करते ही, "भिक्षुओ, सारिपुत्त और महामोग्गल्लान की संगति करो। वे ज्ञानी हैं, पंडित हैं। सब्रह्मचारियों पर अनुग्रह करने वाले हैं। सारिपुत्त जन्म देने वाली जननी के समान हैं, तो महामोग्गल्लान पोषण करने वाली धात्री के समान। सारिपुत्त सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित करते हैं तो महामोग्गल्लान निर्वाण में।"

आचार्य पूजक

उस समय दोनों मित्रों – आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान मोग्गल्लान – ने भगवान के शिष्य अश्वजित से प्रतीत्यसमुत्पाद धर्म प्राप्त किया। दोनों श्रावकों के मन में आचार्य संजय के प्रति गौरवभाव था, इसलिए उनसे बताकर और अनुमति लेकर भगवान के पास आये।

आयुष्मान सारिपुत्त जब स्थविर अश्वजित के साथ एक ही विहार में रहते, तब वे पहले भगवान की सेवा करते और उसके बाद स्थविर अश्वजित की सेवा के लिए चले जाते। ऐसा वे अपने आचार्य अश्वजित के प्रति गौरवभाव के कारण करते। वे कहा करते – "श्रमण अश्वजित मेरे प्रथम आचार्य हैं। उन्हीं से मैंने भगवान का धर्म सीखा है।" पर, जब वे स्थविर अश्वजित के साथ एक ही विहार में नहीं होते, तब जिस दिशा में स्थविर अश्वजित होते उस दिशा की ओर मुख करके उन्हें अंजलिबद्ध पंचांग प्रणाम करते। यह देखकर कुछ भिक्षुओं में यह बात चल पड़ी, कि आयुष्मान सारिपुत्त अग्रश्रावक होकर भी दिशाओं को नमस्कार करते हैं। लगता है, अब भी वे ब्राह्मण-दृष्टि धारण किये हैं, इससे मुक्त नहीं हुए हैं।

सायंकाल धर्मसभा में भगवान ने पूछा – "भिक्षुओ! किस संबंध में बात चल रही है?"

"भंते! अमुक संबंध में।"

तब भगवान बोले– "भिक्षुओ! सारिपुत्त दिशाओं को नमस्कार नहीं करता। वह अपने आचार्य अश्वजित को नमस्कार करता है। वह आचार्यपूजक है।" ऐसा कहते हुये भगवान ने यह गाथा सुनायी :

"यस्मा हि धम्मं पुरिसो विजञ्ञा, इन्दंव नं देवता पूजयेय्य।
सो पूजितो तस्मि पसन्नचित्तो, बहुस्सुतो पातुकरोति धम्मं॥"

[यदि कोई व्यक्ति धर्म जानता है, तो इंद्र भी उसकी पूजा करते हैं। इस प्रकार पूजित हो वह प्रसन्नचित्त होता है और वह विद्वान धर्म को प्रकाशित करता है।]

इन्द्र पूजता उस मनुष्य को, जिसमें धर्म प्रतिष्ठित।
पूजित हो वह विज्ञ खुशी से, करता सबको शिक्षित॥

अग्रश्रावकों की परस्पर-स्तुति

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महामोग्गल्लान राजगीर के वेळुवन कलंदकनिवाप में एक ही जगह विहार करते थे। तब सायंकाल आयुष्मान सारिपुत्त आयुष्मान महामोग्गल्लान के पास गये और उनसे कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये। आयुष्मान महामोग्गल्लान की प्रसन्न मुद्रा देखकर सारिपुत्त ने कहा, "आयुष्मान आपकी इंद्रियां विशेषरूप से प्रसन्न और मुखवर्ण तेजयुक्त और परिशुद्ध लग रहा है। क्या आज आयुष्मान ने शांत विहार से विहार किया है?"

"आयुष्मान, आज मैंने ओळारिक विहार से विहार किया है और धार्मिक कथा भी हुई है।"

"किसके साथ धार्मिक कथा हुई?"

"आवुस! भगवान के साथ।"

"भगवान के साथ क्या धर्मकथा हुई?"

"आयुष्मान, मैंने भगवान से कहा – 'भंते, आरव्धवीर्य-आरव्धवीर्य कहा जाता है; सो आरव्धवीर्य कैसे होता है?

"आवुस! ऐसा कहे जाने पर भगवान ने कहा – 'मोग्गल्लान! भिक्षु इस प्रकार आरव्धवीर्य हो विहार करता है - त्वचा, नस और हड्डी ही भले वच जाएं; शरीर से मांस और लहू भी भले ही सूख जायं; किंतु पुरुष के उत्साह, वीर्य और पराक्रम से जो पाया जा सकता है उसे विना पाये विश्राम नहीं लूंगा। मोग्गल्लान! इस तरह आरव्धवीर्य होता है।"

"आवुस! भगवान के साथ मेरी यही धर्मकथा हुई।" महास्थविर महामोग्गल्लान के कथन का अनुमोदन करते हुए सहर्ष महास्थविर सारिपुत्त

ओळारिक विहार : दिव्य चक्षु तथा दिव्य श्रोत्र धातु से विहार करना ओळारिक विहार है क्योंकि इनके दोनों आलंवन रूप और शब्द ओळारिक हैं। भगवान के रूप दर्शन तथा उनकी वाणी को सुनने के लिए चक्षु और श्रोत्र को इस ध्यान से शुद्ध किया जाता है।

ने कहा, "जैसे पर्वतराज हिमालय के सामने कंकड़-पत्थर की अदनी ढेरी पड़ी हो, आयुष्मान महामोग्गल्लान के सामने हमारी वही स्थिति है। आयुष्मान, आप महाऋद्धिशाली, महानुभाव हैं। यदि संकल्प कर लें तो कल्प-भर भी ठहर सकते हैं।"

इस पर महास्थविर महामोग्गल्लान ने कहा, "आयुष्मान, जैसे नमक के एक बहुत वड़े ढेर के सामने नमक का एक अदना सा-कण पड़ा हो, वैसे ही आयुष्मान सारिपुत्त के सामने हम हैं। भगवान ने भी आयुष्मान सारिपुत्त की अनेक प्रकार से प्रशंसा की है।"

इस प्रकार, इन महानागों (=महावीरों) ने एक दूसरे के सुभाषित का अनुमोदन किया।

भिक्षुओ! मेरा वेटा तृष्णारहित है

एक वार स्थविर सारिपुत्त अपने पांच सौ भिक्षु परिवार के साथ देहात के एक विहार में वर्षावास कर रहे थे। वहां स्थविर को पाकर उपासकों ने वहुत से वर्षावासिक चीवर देने का वचन दिया। वर्षावास का समय वीतने पर स्थविर ने विधिवत पवारणा मनाया। तव तक जनता ने वर्षावासिक चीवर नहीं भेजा था। स्थविर को भगवान के दर्शनार्थ सावत्थी आना था। इसलिए उन्होंने भिक्षुओं से कहा – "वर्षावासिक वस्त्र प्राप्त होने पर उन्हें श्रामणेरों के साथ मेरे पास भेज दें या उन्हें रखकर मेरे पास संदेश भेज दें।" ऐसा कहकर वे शास्ता के दर्शनार्थ चले गये।

आयुष्मान सारिपुत्त का निर्देश सुनकर भिक्षुओं को लगा कि अभी भी स्थविर के मन में तृष्णा विद्यमान है। भिक्षुओं ने यह घटना भगवान से वतायी।

ऐसा सुनकर शास्ता ने कहा – "भिक्षुओ! ऐसा सोचने की भूल भी न करो। मेरे वेटे के मन में तृष्णा का नाम तक नहीं है। दायकों को पुण्यप्राप्ति के लिए और तरुण श्रामणेरों को धर्म से उत्पन्न लाभ से वंचित न होने देने के लिए उसने ऐसा कहा है।" ऐसा कहकर भगवान ने यह गाथा कही :

"आसा यस्स न विज्जन्ति, अस्मिं लोके परम्हि च।
निरासासं विसंयुत्तं, तमहं व्रूमि व्राह्मणं॥"

– धम्मपद ४१०, व्राह्मणवग्ग

[जिसके (मन में) इस लोक अथवा परलोक के संबंध में कोई आशा-आकांक्षा नहीं रह गयी है, जो सभी प्रकार की आशाओं-आकांक्षाओं (और आसक्तियों) से मुक्त हो चुका है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।]

लोक और परलोक के लिए, जिसे न कोई आशा।
आकांक्षा-आसक्ति रहित, वह ब्राह्मण की परिभाषा॥

सिर पर यक्ष का प्रहार

एक समय भगवान राजगीर के वेळुवन कलंदकनिवाप में विहार कर रहे थे।

उस समय आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महामोग्गल्लान को कपोत कंदरा में देखकर, एक यक्ष ने दूसरे यक्ष से कहा – "मित्र! मेरी इच्छा हो रही है कि इस श्रमण के सिर पर प्रहार कर दूं।"

उसके ऐसा कहने पर दूसरे यक्ष ने कहा, "मित्र! रहने दो। इस श्रमण से मत लगो। इसका तेज और प्रताप बड़ा महान है।"

दूसरी तथा तीसरी बार भी पहले यक्ष द्वारा आयुष्मान सारिपुत्त पर प्रहार करने के लिए पूछे जाने पर दूसरे यक्ष ने तीनों बार पहले यक्ष को प्रहार करने से मना किया।

तब पहले यक्ष ने दूसरे यक्ष के कहे हुए को न मान, आयुष्मान सारिपुत्त के सिर पर प्रहार कर दिया। उस प्रहार से सात या आठ हाथ ऊंचा हाथी भी गिर पड़ता, पर्वत-कूट भी चूर-चूर हो जाता। सो वह यक्ष 'जल रहा हूं, जल रहा हूं', कहते-कहते वहीं से घोर नरक में जा गिरा।

आयुष्मान महामोग्गल्लान ने अपने अलौकिक दिव्य विशुद्ध चक्षु से उस यक्ष को आयुष्मान सारिपुत्त के सिर पर प्रहार करते देख लिया। देखकर आयुष्मान सारिपुत्त के पास गये और उनसे बोले, "आवुस! कुशल तो है? कुछ कष्ट तो नहीं है?"

"आवुस मोग्गल्लान! बिल्कुल कुशल है; हां, मेरे सिर पर कुछ दर्द-सा प्रतीत होता है।"

"आवुस सारिपुत्त! बड़ा आश्चर्य है, बड़ा अद्भुत है! आप आयुष्मान सारिपुत्त का तेज और प्रताप बड़ा भारी है। किसी यक्ष ने आपके सिर पर प्रहार किया। वह प्रहार भी ऐसा कड़ा कि उसके पड़ने से सात या आठ हाथ ऊंचा हाथी भी गिर पड़ता, पर्वत-कूट भी चूर-चूर हो जाता।"

"आवुस मोग्गल्लान! बड़ा आश्चर्य है, बड़ा अद्भुत है! आयुष्मान महामोग्गल्लान का तेज और प्रताप इतना बड़ा है कि यक्षों को देख लेते हैं, मैं तो कूड़ा-कर्कट के ढेर पर विचरण करने वाले छोटे पिशाच को भी नहीं देख पाता।"

भगवान ने अपने अलौकिक विशुद्ध दिव्य श्रोत्र से उन दो महानागों के इस कथा-संलाप को सुना।

इसे जान, उस समय उनके मुख से उदान के ये वचन निकल पड़े –

"यस्स सेलूपमं चित्तं, ठितं नानुपकम्पति।
विरत्तं रजनीयेसु, कोपनेय्ये न कुप्पति।
यस्सेवं भावितं चित्तं, कुतो तं दुक्खमेस्सती"ति॥

– उदान ३४, यक्खपहारसुत्त

"अनुरक्त नहीं होता राग के विषयों में,
चित्त जिसका रहता अचल किसी शिला के समान।
न करता क्रोध भी, क्रोध के विषयों में,
क्यों हो दुःखद उसे, जाना जिसने लगाना ध्यान॥"

निष्कासन पर भी समताभाव

विहारों में मौन, शांत वातावरण बनाये रखने के लिए भगवान बहुत सजग रहते थे। जहां तक एक-एक साधक धीमी आवाज में परस्पर धर्म-संबंधी प्रश्न पूछते और उत्तर देते, वहां तक विहार का वातावरण साधना के अनुकूल बना रहता था। परंतु जहां एक-से-अधिक लोग एक-साथ, जोर-जोर से बोलने लगते, वहां हंगामा-सा मच जाता था। ऐसा होने पर धर्म-साधना के विहारों में और अन्य सांप्रदायिक आश्रमों में कोई अंतर नहीं रह जाता था। ध्यान के विहार का वातावरण भी उसी अधोगति को प्राप्त हो जाता था। इसलिए इस क्षेत्र में अपराध करने वाला जो भी हो, भगवान के लिए वह अक्षम्य ही होता था।

यह नियम केवल शहरों के समीप स्थित विहारों पर ही नहीं लागू होता था, प्रत्युत शहर से दूर वन में भी, जहां साधक भिक्षु ध्यान करते थे, उसे मौन और शांत बनाये रखना आवश्यक माना जाता था। वतरस के लोभी भिक्षुओं को सांसारिक वार्ता से दूर रहने के लिए भगवान द्वारा अनेक बार फटकार लगायी गयी।

भगवान एक बार शाक्य जनपद गये। वहां चातुमा के आमलकी वन में भगवान विहार कर रहे थे। वहां सारिपुत्त और महामोग्गल्लान के साथ आये हुए पांच सौ नये-नये प्रव्रजित भिक्षु मछली-बाजार सा हल्ला-गुल्ला करने लगे। यह देखकर आश्चर्य होता है कि इस अपराध के लिए भगवान ने सारिपुत्त और महामोग्गल्लान जैसे अग्र महाश्रावकों को भी नहीं बख्शा। उन्हें भी वैसा दंड देते हुए बोले – "चले जाओ, भिक्षुओ! मैं तुम्हें यहां से निकालता हूं। तुम मेरे साथ मत रहो।"

"भगवान का मतलब साफ था। वे भगवान के साथ रहने के लायक नहीं थे। जो अपने साथियों को मौन न रख सकें, वे चाहे अग्र महाश्रावक ही क्यों न हों, मौन-प्रेमी भगवान के साथ रहने लायक नहीं थे। अपने साथियों सहित भगवान को नमन कर उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर दोनों अग्र महाश्रावक भगवान से दूर चले गये।

चारों ओर सन्नाटा छा गया। भगवान के दाहिने और बायें हाथ-सदृश सारिपुत्त और महामोग्गल्लान मौन तोड़ने के अपराध में विहार से निकाल दिये गये। ध्यान-स्थली के नियमों का पालन करना नितांत आवश्यक था। कोई नियम भंग करेगा, तो भगवान अनुशासन की कार्यवाही करेंगे ही।

सारिपुत्त और मोग्गल्लान के बिना धर्म-प्रसारण का काम सुचारु रूप से कैसे चलेगा?

इसी चिंता से ग्रस्त चातुमा के शाक्य भिक्षुओं की सिफारिश लेकर भगवान के पास आये और कुछ देर के बाद सहम्पति ब्रह्मा भी भगवान के पास आ प्रकट हुए और सबों ने उन निकाले गये भिक्षुओं की सिफारिश करते हुए कहा – "भंते, भगवान भिक्षु-संघ पर प्रसन्न हों। भंते, भगवान, भिक्षु-संघ से बातचीत करें।

"भंते भगवान, ये नये-नये प्रव्रजित भिक्षु हैं। भगवान का सान्निध्य नहीं पायेंगे तो मुरझा जायेंगे। जैसे नये-नये अंकुरित पौधे जल न मिलने से मुरझा जाते हैं, जैसे नन्हा बछड़ा अपनी मां को न देखने से मुरझा जाता है।"

इस पर भगवान ने निष्कासित भिक्षुओं को पुनः लौट आने की अनुमति दी। निष्कासन का दंड सदा के लिए लागू नहीं होता। उपयुक्त समय देख कर भगवान उसे वापिस ले लिया करते थे। यदि वे समय-समय पर ऐसे दंड न देते तो ध्यान-केंद्रों का अनुशासन कैसे कायम रह पाता?

एक ओर बैठे स्थविर महामोग्गल्लान से भगवान ने पूछा, "मोग्गल्लान, मेरे द्वारा भिक्षु-संघ को निकाल देने पर तुझे कैसा लगा?"

"भंते, जब भगवान ने भिक्षु-संघ को बाहर निकाला तब मुझे ऐसा लगा कि अब भगवान इष्ट धर्म-सुख से युक्त होकर विहरेंगे और आयुष्मान सारिपुत्त और मैं भिक्षु-संघ की देख-रेख करेंगे।"

"साधु मोग्गल्लान, साधु! भिक्षु-संघ की रक्षा चाहे मैं करूं या तुम और सारिपुत्त।"

इसके उपरांत भगवान ने इन भिक्षुओं को प्रव्रज्या में आने वाले संकटों के बारे में संबोधित किया।

सारिपुत्त को क्रोध नहीं आता

एक बार भगवान राजगह के वेळुवन में विहार करते थे। तब आयुष्मान सारिपुत्त अपने पांच सौ भिक्षु परिवार के साथ भिक्षाचार के लिए अपने गृह नाळकगाम गये। मां के दरवाजे पर पहुँचे। मां ने भोजन हेतु सबको बैठाया। मां मिथ्यादृष्टिक थी। उन्हें त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म, संघ) में तनिक भी श्रद्धा नहीं थी। घर-घर घूमकर भिक्षा लेना उन्हें जूठन खाने जैसा लगता। भोजन परोसते हुए अपने मन का गुब्बार निकालते हुए उन्होंने कहा – "करोड़ों की संपत्ति छोड़कर तूने मेरा नाश कर दिया। घर-घर घूमकर जूठन बटोरता है। कलछुलभर भात से कभी तेरा पेट नहीं भरा होगा। आज तो पेटभर खा ले।" ऐसे ही वह अन्य भिक्षुओंको भी कोसतीं, "जूठन बटोरनेवालो, खा लो भरपेट।" भिक्षा के बाद स्थविर सबके साथ विहार लौट आये।

आयुष्मान सारिपुत्त के साथ आयुष्मान राहुल भी गये थे। शास्ता ने उनसे पूछा – "राहुल! कहां गये थे?"

"भंते! पितामही के गांव।"

"तेरी पितामही ने तेरे उपाध्याय को क्या कहा?"

"भंते! पितामही ने उपाध्याय को बुरा-भला कहा।" भोजन परोसते समय मां ने जो कुछ कहा आयुष्मान राहुल ने भगवान को सब कुछ यथावत बता दिया।

भगवान ने पूछा – "तेरे उपाध्याय ने क्या कहा?"

"भंते! कुछ नहीं, चुपचाप सुनते रहे।"

तब भिक्षुओं ने भगवान से कहा – "भंते! भोजन के समय अपशब्द सुनते रहने पर भी आयुष्मान सारिपुत्त को तनिक भी क्रोध नहीं आया। भंते! आश्चर्य! धर्मसेनापति एकदम शांत रहे।"

"भिक्षुओ! क्षीणास्रव को क्रोध नहीं आता।" ऐसा कह कर भगवान ने यह गाथा कही :

"अक्कोधनं वतवन्तं, सीलवन्तं अनुस्सदं।
दन्तं अन्तिमसारीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥"

– धम्मपद ४००, ब्राह्मणवग्ग

["जो अक्रोधी, (धुत-) व्रती, शीलवान, (तृष्णा के न रहने से) निरभिमानी है, (दंभी नहीं है), (छः इंद्रियों का दमन कर लेने से) दान्त (संयमी) और अंतिम शरीरधारी है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।]

क्रोध और अभिमान रहित, जो शीलवान व्रतधारी है।
उसको मैं ब्राह्मण कहता, जो अंतिम कायाधारी है॥

स्थविर द्वारा खाजा-त्याग

उन दिनों आयुष्मान सारिपुत्त खाजा खाते थे। उपासकों द्वारा यह जानने पर बहुत से उपासक खाजा लेकर विहार आते। एक दिन भिक्षुओं द्वारा खाजा ले लिए जाने पर भी बहुत सा खाजा बच गया। उपासकों ने कहा – "भंते! जो भिक्षु गाँवों में गये हैं, उनके लिए भी रख लें।"

उस समय स्थविर सारिपुत्त का एक श्रामणेर गांव में गया था। भिक्षुओं ने उसका हिस्सा स्थविर को दे दिया। उसे न आता देखकर स्थविर ने वह खाजा खा लिया। कुछ देर बाद श्रामणेर आ गया। स्थविर ने कहा – "आयुष्मान! तेरे लिए रखा हुआ खाजा मैं खा गया।"

वह बोला – "भंते! मधुर वस्तु किसे अप्रिय लगेगी?"

तत्क्षण आयुष्मान सारिपुत्त ने दृढ़ निश्चय किया – "अब जीवन में कभी खाजा नहीं खाऊंगा।" इस घटना के बाद स्थविर ने कभी खाजा छुआ तक नहीं। उनके द्वारा खाजा-त्याग की बात संघ में प्रसिद्ध हो गयी। सायंकाल धर्मसभा में भगवान ने पूछा – "भिक्षुओ! किस विषय में बातें हो रही हैं?"

"भंते! अमुक विषय में।"

पूर्वजन्म की कथा सुनाते हुये शास्ता ने कहा – "भिक्षुओ! एक बार छोड़ी हुयी चीज को प्राण चले जाने पर भी सारिपुत्त ग्रहण नहीं करता।"

धर्मपूर्वक आहार-ग्रहण

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त राजगह के वेळुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे। पूर्वाह्न समय सुआच्छादित हो पात्र-चीवर ले राजगह में भिक्षाचार के लिए पैठे। भिक्षा पाकर एक दीवाल के सहारे बैठकर भोजन करने लगे। उसी समय सूचीमुखी परिव्राजिका वहां आ पहुँची। स्थविर को भोजन करते देखकर वह बोली – "श्रमण! नीचे मुँह करके क्यों खा रहे हो?"

"बहन! मैं नीचे मुँह करके नहीं खा रहा हूं।"

"श्रमण! तो ऊपर मुँह करके खा रहे हो?"

"नहीं बहन! मैं ऊपर मुँह करके नहीं खा रहा हूं।"

"तो, क्या चारों ओर मुँह घुमा-घुमा कर खा रहे हो?"

"बहन! मैं चारों ओर मुँह घुमा-घुमा कर भी नहीं खा रहा हूं।"

"क्या आप अपना मुख एक जगह स्थिर रख कर खा रहे हो?"

"बहन! मैं ऐसा नहीं कर रहा हूं।"

परिव्राजिका बोली – "श्रमण! आप मेरे सभी प्रश्नों का उत्तर 'नहीं-नहीं' कहकर दे रहे हो, तो आप ही बताओ, आप कैसे खा रहे हो?"

आयुष्मान सारिपुत्त बोले – "बहन! जो श्रमण या ब्राह्मण वास्तुकला, तिरश्चीनविद्या (पशु-पक्षी विद्या) द्वारा अपनी मिथ्या आजीविका चलाते हैं वे मुख नीचा करके भोजन करते हैं।

"जो नक्षत्रविद्या की मिथ्या आजीविका से जीवन निर्वाह करते हैं वे ऊपर मुख करके भोजन करते हैं।

"जो दूतकर्म आदि मिथ्या आजीविका से जीवन निर्वाह करते हैं, वे दिशाओं में मुँह घुमा-घुमा कर खाने वाले कहे जाते हैं।

"जो श्रमण या ब्राह्मण अंगविद्या (हस्तरेखा आदि शारीरिक चिह्न) की मिथ्या आजीविका से जीवन निर्वाह करते हैं वे एक जगह मुख स्थिर रख कर खाने वाले कहे जाते हैं। बहन! मैं इनमें से किसी तरह जीवनयापन नहीं करता। मैं धर्मपूर्वक भिक्षाटन करके खाता हूं।"

ऐसा उत्तर सुनकर सूचीमुखी परिव्राजिका राजगह की गलियों में और चौराहों पर घूम-घूम कर कहने लगी – "शाक्यपुत्र श्रमण धर्मपूर्वक भिक्षाटन करके आहार ग्रहण करते हैं। शाक्यपुत्र श्रमण अनिंद्य आहार ग्रहण करते हैं, शाक्यपुत्र श्रमणों को भिक्षा दो, शाक्यपुत्र श्रमणों को भिक्षा दो!"

– संयुत्तनिकाय (२.३.३४१), सूचिमुखीसुत्त

विविध प्रसंग

बुद्ध अतुलनीय

एक समय भगवान नालन्दा के पावारिक आम्रवन में विहार करते थे। तब आयुष्मान सारिपुत्त भगवान के पास आये और उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। तब आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान से कहा – "भंते! भगवान पर मेरी दृढ़ श्रद्धा हो गयी है। मेरा ऐसा विश्वास है, कि संबोधि (परम ज्ञान) में भगवान से बढ़कर कोई दूसरा श्रमण, ब्राह्मण न हुआ, न होगा, न इस समय है।"

ऐसा सुनकर भगवान ने आयुष्मान सारिपुत्त से कहा – "सारिपुत्त! तूने मेरे बारे में ऐसा उदार सिंहनाद किया। क्या तूने अतीत काल के सभी अर्हंत सम्यक-संबुद्ध भगवानों के शील, समाधि, प्रज्ञा के संबंध में अपने चित्त से जान लिया है?"

"नहीं, भंते।"

"क्या तूने भविष्य काल के सभी अर्हंत सम्यक-संबुद्ध भगवानों के शील, समाधि, प्रज्ञा के संबंध में अपने चित्त से जान लिया है?"

"नहीं, भंते।"

"तो क्या तूने वर्तमान काल के अर्हंत सम्यक-संबुद्ध भगवान (अर्थात मेरे) शील, समाधि, प्रज्ञा के संबंध में अपने चित्त से जान लिया है?"

"नहीं, भंते।"

"सारिपुत्त! यदि तेरा अतीत, अनागत और वर्तमान के सम्यक-संबुद्ध भगवानों के विषय में पर-चित्त ज्ञान नहीं है, तो ऐसी उदार वाणी क्यों कही?"

"भंते! मुझे सभी बुद्धों का चेतःपरिज्ञान नहीं है, किंतु सभी की धर्म-समानता मुझे विदित है। अतीत काल के बुद्धों ने पांचों नीवरणों को दूर

कर, प्रज्ञा द्वारा चित्त के मैल हटा, चारों स्मृति-प्रस्थानों में चित्त को सु-प्रतिष्ठित कर, सात बोध्यंगों की यथार्थ से भावना कर, सर्वश्रेष्ठ सम्यक-संबोधि को प्राप्त किया था। भविष्यकाल में भी बुद्ध ऐसे ही सम्यक-संबोधि प्राप्त करेंगे। और आप भगवान ने भी इसे इसी तरह प्राप्त किया है। इसलिए, भंते! मैंने ऐसा सिंहनाद किया है।"

आयुष्मान सारिपुत्त के कथन का अनुमोदन करते हुये भगवान ने कहा, "साधु! सारिपुत्त! साधु! धर्म की इस बात को तू भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिकाओं के बीच प्रकाशित करते रहना। सारिपुत्त! जिन अज्ञ लोगों को बुद्ध के प्रति शंका या विमति होगी, वह धर्म की इस वाणी को सुनकर दूर हो जायगी।"

–संयुत्तनिकाय (३.५.३७८), नालन्दसुत्त

पुण्ण का पुण्य जागा

एक समय राजगह नगरवासियों ने एक सप्ताह तक नक्षत्र-उत्सव मनाने का निश्चय किया। नगरश्रेष्ठी सुमन के सेवक पुण्ण ने अपनी दरिद्रता की वजह से उत्सव में अरुचि दर्शाते हुए खेतीबाड़ी के काम में अपने को व्यस्त रखने का निश्चय किया। पुण्ण ने पत्नी को दोपहर का भोजन खेत पर लाने के लिए कहा।

स्थविर सारिपुत्त निरोध-समापत्ति से उठकर पुण्ण के अंदर बलवती श्रद्धा तथा आतिथ्य-सत्कार की भावना को जान, उस पर अनुकंपा करने के लिए उसके पास पहुँचे। पुण्ण ने स्थविर को दूर से आते देख कृषि-कार्य छोड़ उन्हें पंचांग प्रणाम किया। पुण्ण ने स्थविर को दातुन तथा जलपात्र भरकर उनकी तात्कालिक आवश्यकता को पूर्ण किया। थेर वहां से भिक्षाटन के लिए प्रस्थान कर गये।

पति के लिए भोजन ले जाती हुई पुण्ण-पत्नी के मन में स्थविर को मार्ग में आते देख यह भाव जागा – 'जब कभी मेरे पास दान देने के लिए कुछ होता है तब स्थविरों के दर्शन नहीं होते हैं; और जब कभी स्थविरों के दर्शन होते हैं तब मेरे पास देने के लिए कुछ नहीं होता है। आज तो मेरे पास दान देने के लिए (खाद्य-सामग्री) भी है तथा ये स्थविर भी मेरे सम्मुख उपस्थित हैं। पति के लिए तो मैं दुबारा भोजन पका लूंगी।' इस चित्त की चेतना के साथ पुण्ण-पत्नी ने स्थविर से निवेदन किया – "भंते! मेरा यह रूखा-सूखा भोजन स्वीकार कर मुझ पर अनुग्रह करें जिससे कि आप द्वारा साक्षात किये गये धर्म में हम भी पुण्यलाभी हों।" स्थविर ने भोजन ग्रहण कर उसका अनुमोदन किया।

पत्नी ने पुनः घर आकर पति के लिए भोजन पकाया। भोजन लाने में विलंब जान पत्नी के मन में भय जागा – कहीं आज उसे पति के क्रोध का शिकार न होना पड़े। उसने पति से निवेदन किया – "स्वामी! आज तुम अपने क्रोध पर नियंत्रण करना। मुझ पर कुपित न होना।" उसने भोजन में विलंब होने के कारण को बताते हुए कहा – "आज जब मैं तुम्हारे लिए भोजन ला रही थी तब मार्ग में मुझे धर्मसेनापति सारिपुत्त दिखे। मैंने वह भोजन उनके भिक्षापात्र में डाल दिया और पुनः मैं तुम्हारे लिए भोजन पका कर लायी हूं। इस कारण भोजन में विलंब हो गया।"

पति ने कहा – "भद्रे! तुमने बड़ा ही सुंदर, बड़ा ही अच्छा कार्य किया! मैंने भी आज दातुन तथा मुँह धोने का पानी देकर थेर की सेवा की। दूसरे दिन प्रातःकाल पुण्ण खेत पर गया। उसने देखा कि उसके द्वारा जोता गया सारा खेत कर्णिकार पुष्प की तरह सोने के रंग का हो गया है। पति-पत्नी आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें तनिक भी विश्वास नहीं हो रहा था कि उनका सारा खेत सोने का हो गया। उन्होंने इस बात की पुष्टि की और पाया कि खेत के छोटे-से टुकड़े में आंवले के बराबर भी मिट्टी का पिंड नहीं है जो सोना न हो गया हो। पुण्ण ने पत्नी से कहा – "भद्रे! दूसरों का बोया बीज तीन या चार महीने में फल देता है। आश्चर्य है! हमारे द्वारा आयुष्मान सारिपुत्त के हृदय में रोपे गये श्रद्धाबीज ने इतना शीघ्र ही फल दे दिया है।"

सालवन का आत्यंतिक वर्णन

एक अवसर पर महागोसिङ्गसालवन में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध भिक्षु जैसे आयुष्मान सारिपुत्त, आयुष्मान महामोग्गल्लान, आयुष्मान महाकस्सप, आयुष्मान अनुरुद्ध, आयुष्मान रेवत, आयुष्मान आनन्द आदि एकत्र हुए थे। उस समय आयुष्मान सारिपुत्त ने उनके समक्ष यह प्रस्ताव रखा – "रमणीय है यह सालवन। आज चांदनी रात है। सालवृक्ष सब प्रकार से पुष्पित हैं। मानों

दिव्य गंध बहा रहे हैं। अच्छा हो यदि इस विषय पर चर्चा हो कि किस प्रकार के भिक्षु से इस सालवन की शोभा में और भी वृद्धि हो सकती है।"

उपस्थित भिक्षु-वृंद में से सभी ने अपनी-अपनी राय दी। जब आयुष्मान सारिपुत्त की बारी आयी तब उन्होंने कहा – "आयुष्मान मोग्गल्लान! यदि एक भिक्षु चित्त को वश में करता है, स्वयं चित्त के वश में नहीं होता; वह जिस विहारसमापत्ति (ध्यान-प्रकार) को प्राप्तकर पूर्वाह्न समय विहरना चाहता है उसी विहार से पूर्वाह्न समय विहरता है, जिस विहार से मध्याह्न समय विहरना चाहता है उसी विहार से मध्याह्न समय विहरता है, वह जिस विहारसमापत्ति (ध्यान-प्रकार) को प्राप्तकर अपराह्न समय विहरना चाहता है उसी विहार से अपराह्न समय विहरता है। आयुष्मान महामोग्गल्लान! जैसे किसी राजा या उसके किसी मंत्री के पास बहुत बड़ी दुशालाओं से भरी पेटी (संदूक) हो, तब राजा या उसका मंत्री जिस समय (पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न) जो दुशाला धारण करना चाहे उसे धारण कर सकता है। ठीक, उसी प्रकार जो भिक्षु चित्त को वश में करता है, स्वयं चित्त के वश में नहीं होता; वह जिस विहारसमापत्ति को प्राप्तकर जिस समय (पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न) जिस विहार से विहरना चाहे वह विहरता है। तो मेरे विचार में इस प्रकार आयुष्मान मोग्गल्लान! ऐसे ही भिक्षुओं से इस सालवन की शोभा में और भी वृद्धि हो सकती है।"

इस पर भगवान ने सभी के कथन को सुभाषित बतलाया और अपनी ओर से कहा – 'किस प्रकार के भिक्षु से गोसिङ्गसालवन शोभायमान हो सकता है? यहां, सारिपुत्त, कोई भिक्षु भोजन के उपरांत भिक्षा से निवृत्त हो, आसन मार, शरीर को सीधा रख, स्मृति को मुख के इर्दगिर्द प्रस्थापित कर यह संकल्प करे – 'मैं तब तक इस आसन को नहीं छोड़ूंगा जब तक मेरे चित्त से पूर्णतया आस्रव छूट न जाएं।' सारिपुत्त! ऐसे भिक्षु से गोसिङ्गसालवन शोभायमान होगा।"

– मज्झिमनिकाय (१.४.३३२-३४५), महागोसिङ्गसुत्त

'ब्राह्मण' का 'साधना' से मेल

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में अनाथपिंडिक के जेतवनाराम विहार में साधना हेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान सारिपुत्त, महामोग्गल्लान, महाकस्सप, महाकच्चान, महाकोट्ठिक, महाकप्पिन, महाचुन्द, अनुरुद्ध, रेवत एवं आयुष्मान नन्द भगवान के पास जा रहे थे।

भगवान ने उन आयुष्मानों को वहां आते हुए दूर से ही देख लिया। उन्हें देखते ही वे भिक्षुओं से बोले – "भिक्षुओ! ये ब्राह्मण आ रहे हैं!"

भगवान के यह वचन सुनकर वहां श्रोताओं में बैठा कोई ब्राह्मण जाति से उत्पन्न भिक्षु उत्सुकतावश भगवान से यह प्रश्न पूछ बैठा – "भंते! किन गुणों के कारण कोई ब्राह्मण कहलाता है?" अथवा "ब्राह्मणकारक धर्म कौन से होते हैं?"

तब भगवान ने उस अवसर पर प्रश्न की गंभीरता को समझते हुए यह उदान कहा –

"बाहित्वा पापके धम्मे, ये चरन्ति सदा सता।
खीणसंयोजना बुद्धा, ते वे लोकस्मि ब्राह्मणा॥"

– उदान ५, ब्राह्मणसुत्त

["पापमय अकुशल धर्मों को दूर हटाकर, जो सदा स्मृति-संप्रज्ञान के साथ साधना करते हैं ऐसे साधक ही आस्रवक्षय होने पर ज्ञान प्राप्त कर लोक में 'ब्राह्मण' कहलाते हैं॥"]

ब्रह्मलोक पहुँचने का सही मार्ग

एक अवसर पर स्थविर सारिपुत्त अपने मामा ब्राह्मण के पास गये। उनसे पूछा – "ब्राह्मण! कुछ पुण्य-कर्म, कुशल कर्म करते हो?"

ब्राह्मण ने कहा – "हां भंते! करता हूं।"

"क्या करते हो?"

ब्राह्मण ने बताया – "प्रतिमाह हजार खर्च करके दान देता हूं।"

"किसको देते हो?"

"निर्ग्रंथों को।"

"ब्राह्मण! क्या प्रार्थना करते हो? क्या मांगते हो?"

"भंते! ब्रह्मलोक प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करता हूं।"

"तुम जो करते हो, क्या वह ब्रह्मलोक प्राप्त करने का सही मार्ग है? क्या इस तरीके से ब्रह्मलोक पहुँचा जा सकता है?"

"हां, भंते! पहुँचा जा सकता है।"

"किसने कहा है? किसके द्वारा बताया गया है?"

"भंते! मेरे आचार्यों ने ऐसा कहा है। उन्होंने यही मार्ग बताया है।"

ऐसा उत्तर पाकर स्थविर ने कहा – "ब्राह्मण! ब्रह्मलोक जाने का मार्ग न तो तुम जानते हो, न ही तुम्हारे आचार्य। चलो मेरे साथ, तुम ब्रह्मलोक पहुँचने का सही मार्ग जानो।"

मामा ब्राह्मण को साथ लेकर स्थविर सारिपुत्त शास्ता के पास आये। ब्राह्मण के साथ हुआ अपना सारा वार्तालाप भगवान को कह सुनाया। फिर निवेदन किया – "भंते! अच्छा हो कि भगवान इस ब्राह्मण को ब्रह्मलोक पहुँचने का सही मार्ग बतावें।"

शास्ता ने पूछा – "ब्राह्मण! क्या यह सच है कि तुम लौकिक पुरुषों को दान देकर ब्रह्मलोक पहुँचना चाहते हो?"

ब्राह्मण ने स्वीकार करते हुये कहा – "हां भंते! यह सच है।"

भगवान बोले – "ब्राह्मण! इस तरह तू सौ वर्ष तक भी दान देता रहे तो भी कुछ प्राप्त नहीं कर सकता। इसके विपरीत अगर तू मेरे श्रावकों को प्रसन्नचित्त एक कड़छुलभर भिक्षा दे तो उसका कहीं अधिक फल प्राप्त होगा।" ऐसा कहकर भगवान ने यह गाथा कही :

मासे मासे सहस्सेन, यो यजेथ सतं समं।
एकञ्च भावितत्तानं, मुहुत्तमपि पूजये।
सायेव पूजना सेय्यो, यञ्चे वस्ससतं हुतं॥

–धम्मपद (१०६), सहस्सवग्ग

[जो (कोई) सौ वर्षों तक महीने-महीने हजार रुपये से यज्ञ करे और (सोतापन्न से लेकर क्षीणास्रव तक) (किसी) भावितात्म (व्यक्ति की) मुहूर्त-भर ही पूजा कर ले तो सौ वर्षों के यज्ञ की अपेक्षा वह (मुहूर्त-भर की) पूजा ही श्रेयस्कर होती है।]

माह-माह कर खर्च सहस्रों यज्ञ करे शत वर्ष।
उससे उत्तम भावितात्म का पूजन क्षणिक सहर्ष॥

भगवान की धर्मदेशना सुनते ही आयुष्मान सारिपुत्त का मामा ब्राह्मण सोतापन्न फल में प्रतिष्ठित हो गया।

सँयतेंद्रिय गृहस्थ द्वारा घोषणा

एक अवसर पर पांच सौ उपासकों सहित उपासक अनाथपिण्डिक भगवान के पास गया। उनका अभिवादन करके सभी उपासक एक ओर बैठ गये।

तब भगवान ने आयुष्मान सारिपुत्त को संबोधित किया – "सारिपुत्त! जो कोई श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ, पांचों शिक्षापदों को ग्रहण किये हुए और प्रत्यक्ष सुखानुभव स्वरूप चारों चैतसिक ध्यानों को बिना कष्ट के प्राप्त कर सकता हो, वह यदि चाहे, तो स्वयं अपने बारे में यह घोषणा कर सकता है, 'कि मेरी अपाय योनि में जन्म ग्रहण करने की संभावना क्षीण हो गयी है। मैं सोतापन्न हो गया हूं। मेरी संबोधि-प्राप्ति निश्चित है।'"

"हे सारिपुत्त! श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ किन पांच शिक्षापदों को ग्रहण किये होता है?

१. आर्यश्रावक प्राणि-हिंसा से विरत होता है;

२. आर्यश्रावक चोरी से विरत होता है;

३. आर्यश्रावक कामभोग-संबंधी मिथ्याचार से विरत होता है;

४. आर्यश्रावक झूठ बोलने से विरत होता है, और

५. आर्यश्रावक शराब, मदिरा आदि नशे तथा प्रमादकारी वस्तुओं के सेवन से विरत होता है।

"सारिपुत्त! श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ इन पांच शिक्षापदों को ग्रहण किये होता है।"

भगवान ने अपना वक्तव्य जारी रखते हुए कहा – "सारिपुत्त!

१. आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति अविचल श्रद्धा से युक्त होता है;

२. आर्यश्रावक धर्म के प्रति अविचल श्रद्धा से युक्त होता है;

३. आर्यश्रावक संघ के प्रति अविचल श्रद्धा से युक्त होता है;

४. आर्यश्रावक श्रेष्ठ, अखंड, अछिद्र, विशुद्ध शीलों से युक्त होता है।

"सारिपुत्त! जो कोई श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ, पांच शिक्षापदों को ग्रहण किये हुए और प्रत्यक्ष सुखानुभव स्वरूप चार चैतसिक ध्यानों को बिना कष्ट प्राप्त कर सकता हो, वह यदि चाहे, तो स्वयं अपने बारे में यह घोषणा कर सकता है कि मेरी अपाय योनि में जन्म ग्रहण करने की संभावना क्षीण हो गयी है। मैं सोतापन्न हो गया हूं। मेरी संबोधि-प्राप्ति निश्चित है।"

"निरयेसु भयं दिस्वा, पापानि परिवज्जये।
अरियधम्मं समादाय, पण्डितो परिवज्जये॥

["नरकपात का भय देखकर पापकर्मों से दूर रहे। बुद्धिमान पुरुष आर्य-धर्म स्वीकार कर इन पापकर्मों को त्याग दे।]

"न हिंसे पाणभूतानि, विज्जमाने परक्कमे।
मुसा च न भणे जानं, अदिन्नं न परामसे॥

["बल का प्रयोग कर किसी प्राणी की हत्या न करे। जानबूझकर असत्य न बोले, न दूसरे की चोरी करे।]

"सेहि दारेहि सन्तुट्ठो, परदारञ्च आरमे।
मेरयं वारुणिं जन्तु, न पिवे चित्तमोहनिं॥

["अपनी स्त्री से ही संतुष्ट रहे, दूसरों की स्त्री में राग न करे। चित्त को उन्मत्त करने वाली सुरा का पान न करे।]

"अनुस्सरेय्य सम्बुद्धं, धम्मञ्चानुवितक्कये।
अब्यापज्जं हितं चित्तं, देवलोकाय भावये॥

["सम्यक-संबुद्ध का अनुस्मरण करे, धर्म का चिंतन करे। चित्त में किसी के प्रति द्वेष न करते हुए देवलोक की भावना करे।]

"उपट्ठिते देय्यधम्मे, पुञ्ञत्थस्स जिगीसतो।
सन्तेसु पठमं दिन्ना, विपुला होति दक्खिणा॥"

["पुण्य चाहने वाले दाता द्वारा दान के योग्य वस्तु संतों को दिये जाने पर उस दान का फल अतिशय विशाल हो जाता है।"]

–अङ्गुत्तरनिकाय (२.५.१७९), गिहिसुत्त

एकांत प्रीति-सुख

एक समय श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक पांच सौ उपासकों के साथ भगवान के पास गया और उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। तब अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान ने कहा –

"हे गृहपति! आप लोगों ने चीवर, भिक्षा, शयनासन तथा रोगी की आवश्यकताओं से भिक्षु-संघ की सेवा की है। हे गृहपति! इतने मात्र से संतुष्ट नहीं रहना चाहिए कि हम लोगों ने चीवर, भिक्षा, शयनासन तथा रोगी की आवश्यकताओं से भिक्षु-संघ की सेवा की है। इसलिए हे गृहपति! यह सीखना चाहिए कि समय-समय पर एकांत प्रीति-सुख का अनुभव करेंगे।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान से कहा – "भंते! आपका यह सुभाषित आश्चर्यकर है। भंते! आपका यह सुभाषित अद्भुत है।

"भंते! जिस समय आर्यश्रावक एकांत प्रीति-सुख का अनुभव करता है, उस समय उसे पांच बातों की अनुभूति नहीं होती।

"यह जो काम-भोग से उत्पन्न दुःख-दौर्मनस्य होता है, उस समय उसे उसकी अनुभूति नहीं होती;

"यह जो काम-भोग से उत्पन्न सुख-सौमनस्य होता है, उस समय उसे उसकी अनुभूति नहीं होती;

"यह जो अकुशल-कर्म से उत्पन्न दुःख-दौर्मनस्य होता है, उस समय उसे उसकी अनुभूति नहीं होती;

"यह जो अकुशल-कर्म से उत्पन्न सुख-सौमनस्य होता है, उस समय उसे उसकी अनुभूति नहीं होती;

"यह जो कुशल-कर्म से उत्पन्न दुःख-दौर्मनस्य होता है, उस समय उसे उसकी अनुभूति नहीं होती;

"भंते! जिस समय आर्य-श्रावक एकांत प्रीति-सुख का अनुभव करता है, उस समय उसे इन पांच वातों की अनुभूति नहीं होती।"

"सारिपुत्त! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।

"सारिपुत्त! जिस समय आर्य-श्रावक एकांत प्रीति-सुख का अनुभव करता है, उस समय उसे इन पांच वातों की अनुभूति नहीं होती।"

– अङ्गुत्तरनिकाय (२.५.१७६), पीतिसुत्त

धर्मरत्न का साक्षात्कार

भगवान का एक उपासक भक्त उनके प्रति बड़ी श्रद्धा रखता था। नियमित रूप से वह बुद्ध और संघरत्न का आतिथ्य-सत्कार किया करता था। एक दिन उसने सोचा, "मैं बुद्धरत्न और संघरत्न का आतिथ्य सत्कार श्रेष्ठ भोजन, वस्त्र से करता हूं, पर धर्मरत्न का सत्कार कभी नहीं करता। मुझे अब धर्मरत्न का भी सत्कार करना चाहिए।" ऐसा विचार करते हुए वह पुष्प, माला, गंध आदि के साथ शास्ता के पास जेतवन में पहुँचा। उनका अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। तव उस उपासक ने भगवान से पूछा – "भंते! मैं धर्म-रत्न का सत्कार करना चाहता हूं। भंते! धर्म-रत्न का सत्कार करने के इच्छुक को क्या करना चाहिए?"

"उपासक! यदि धर्मरत्न का सत्कार करने की इच्छा है, तो धर्म-भण्डागारिक आनन्द का आतिथ्य-सत्कार करो।"

शास्ता के परामर्शानुसार उपासक ने आयुष्मान आनन्द को अगले दिन भोजन के लिए आमंत्रित किया। उपासक ने अगले दिन आयुष्मान आनन्द को एक वढ़िया आसन पर वैठाकर यथोचित सेवा-सत्कार किया। फिर नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजन अपने हाथ से स्वयं परोस कर खिलाये। वाद में तीन चीवरों के साथ उन्हें एक अति वहुमूल्य वस्त्र भेंट देकर विदा किया।

स्थविर आनन्द के मन में यह विचार आया – "यह धर्मरत्न का सत्कार है। मैं इतना योग्य नहीं हूं कि धर्मरत्न के नाम पर इस वहुमूल्य वस्त्र को अपने पास रख सकूं। वास्तव में असली धर्मरत्न तो आयुष्मान सारिपुत्त हैं। वह धर्मसेनापति हैं। वही इसके योग्य अधिकारी हैं।" ऐसा सोचकर आयुष्मान आनन्द ने उसे सादर धर्मसेनापति को भेंट कर दिया।

आयुष्मान आनन्द की भांति आयुष्मान सारिपुत्त के मन में भी वैसा ही विचार उठा, 'यह धर्मरत्न का सत्कार है। मैं इतना योग्य नहीं कि धर्मरत्न के नाम पर इस बहुमूल्य वस्त्र को अपने पास रख सकूं। वास्तव में असली धर्मरत्न तो हमारे शास्ता हैं। वह सम्यक-संबुद्ध हैं, धर्मस्वामी हैं, धर्मराजा हैं, धर्मस्रोत हैं। भगवान ही इसके योग्य अधिकारी हैं', ऐसा विचार कर उन्होंने वह वस्त्र भगवान के चरणों में अर्पित कर दिया। अपने से श्रेष्ठतर किसी और को न देखकर भगवान ने तीनों चीवरों सहित उस बहुमूल्य वस्त्र को ग्रहण कर लिया।

भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया – "भिक्षुओ! कोई भी वस्तु यथायोग्य अधिकारी के पास अपने आप ही पहुँच जाती है।" मेरे एक पूर्व जन्म में भी ऐसे ही एक घटना हुई थी। तब भिक्षुओं के निवेदन पर वह कथा कहकर भगवान ने उनकी जिज्ञासा शांत की।

परिनिर्वाण-लाभ

परिनिर्वाण की अनुमति

भगवान वेळुवगाम में वर्षावास बिताकर सावत्थी के जेतवनाराम आये। धर्मसेनापति ने भगवान के प्रति अपने कर्त्तव्यों को पूरा किया। शिष्यों को उनका काम बताकर दिवास्थान (दिन का समय बिताने का स्थान) को साफ किया। फिर हाथ-पैर धोकर ध्यान के लिए बैठ गये। ध्यान के बाद उनके मन में यह वितर्क उठा कि – "पहले बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं या अग्रश्रावक?" यह जानकर, कि अग्रश्रावक पहले परिनिर्वृत्त होते हैं, उन्होंने अपना आयु-संस्कार जाना, जो केवल सात दिन रह गया था।

उन्होंने देखा कि उनकी मां लगभग १०० वर्ष की आयु की हो गयी है। सारिपुत्त सहित उसके चार पुत्र और तीन पुत्रियां अब तक भगवान बुद्ध की शिक्षा से अर्हत हो गये हैं। जन्म-मरण के भवचक्र से छूट गये हैं। परंतु मां को अपनी परंपरागत मान्यताओं से और कर्मकांडों से गहरा चिपकाव है। वह भगवान बुद्ध की शिक्षा को गलत मानती है। अतः उसे स्वीकार नहीं करती। धर्मसेनापति सारिपुत्त खूब समझते हैं कि मां का उपकार अनंत है। किसी भी पुत्र के लिए अपनी मां की सबसे महान सेवा यही है कि वह उसे मुक्ति के मार्ग पर लगा दे।

महास्थविर सारिपुत्त की कल्याणी शिक्षा से अस्सी हजार गृहस्थ दुःख-मुक्ति का मार्ग अपना कर स्वर्ग में पैदा हुए। इसके बावजूद वे अब तक अपनी माता को बुद्ध के बताये धर्म की ओर आकर्षित नहीं कर सके।

अब परिनिर्वाण के लिए सात दिन शेष बचे हैं। अतः इसके पूर्व 'एक और प्रयत्न करके देख लूं', यह सोच कर उन्होंने अपने परिनिर्वाण के लिए उसी कक्ष को चुना, जिसमें उनका जन्म हुआ था। इस निमित्त अपनी जन्मभूमि नाळकगाम की ओर प्रस्थान करने का निश्चय किया। उन्होंने अपने प्रमुख शिष्य और अनुज चुन्द थेर को कहा कि वहां उनके जो ५०० पुरातन

भिक्षु शिष्य उपस्थित हैं, उन्हें सूचित करें कि वे भी उनके साथ नन्दीगाम की ओर प्रस्थान करने के लिए प्रस्तुत हों। वे स्वयं भगवान के चरणों में अंतिम बार वंदन करने और विदाई लेने के लिए उनके पास गये।

उन्होंने भगवान से कहा – "हे लोकनाथ! महामुनि! मेरा अंतिम नमस्कार स्वीकार करें। मेरा आयु-संस्कार पूरा हो गया। केवल एक सप्ताह शेष है। हे सुगत! मुझे परिनिर्वृत्त होने की अनुमति प्रदान करें।"

भगवान ने पूछा – "सारिपुत्त! कहां परिनिर्वृत्त होगे?" "भंते! अपने जन्मस्थान मगध के नाळकगाम में।" "सारिपुत्त! समयोचित कार्य करो। तुम भिक्षुओं के बड़े भाई जैसे रहे हो। छोटे भाइयों के लिए तुम्हारा दर्शन दुर्लभ होने जा रहा है। इसलिए आज तुम उन्हें अंतिम धर्मदेशना दो।"

धर्मसेनापति भगवान का आशय समझ गये। उन्होंने उनकी वंदना की। ताड़ वृक्ष जितने ऊंचे आकाश में स्थित हो ऋद्धिप्रातिहार्य दिखाकर धर्मदेशना दी। सारा नगर एकत्र था।

आयुष्मान सारिपुत्त को विदाई देने हेतु भगवान मणिकफल रत्नजटित तख्त पर खड़े हुये। स्थविर ने कहा – "भंते! भगवान आज से एक लाख कल्प से भी अधिक पहले मैंने अनोमदस्सी सम्यक-संबुद्ध के चरणों में गिरकर मैंने किसी सम्यक-संबुद्ध का अग्रश्रावक होने की प्रार्थना की। असंख्य कल्पों तक मैंने पारमी अर्जित की। उस पुण्य-पारमी के फलस्वरूप आपके दर्शन की मेरी प्रार्थना पूरी हुयी। यह आपका अंतिम दर्शन है। अब आपके दर्शन कभी नहीं प्राप्त होंगे।" ऐसा कहकर आयुष्मान सारिपुत्त शास्ता को अंजलि जोड़कर तब तक प्रणाम करते रहे और पीछे हटते रहे जब तक वे दिखायी देते रहें।

भगवान ने भिक्षुओं से कहा – "भिक्षुओ! तुम्हारा बड़ा भाई जा रहा है।" उन्हें विदाई देने के लिए भिक्षु द्वारकोष्ठक तक गये। स्थविर ने उन्हें रोका – "आयुष्मानो! तुम लोग यहीं ठहरो। अप्रमत्त हो अपने काम में लगे रहो।"

लोगों ने कहा – "पहले आयुष्मान धर्म-चारिका के लिए जाते थे तब लौट आते थे। अब तो लौटना नहीं होगा।" ऐसा कहते हुये वे सभी विलाप करने लगे। थेर ने उन्हें भी यह कहकर कि 'अप्रमत्त हो अपने काम में लगे रहो' लौटा दिया।

मातृ-सेवा

भगवान से विदाई लेकर धर्मसेनापति सारिपुत्त भदंत चुन्द सहित भिक्षुओं को लेकर चारिका करते हुए सातवें दिन नालकगाम पहुँचे। वहां नगरद्वार पर उनका भांजा उपरेवत मिला। उसके द्वारा माता को अपने आने की सूचना भिजवायी। अपने जन्म का कक्ष ठीक करवाने और साथ आये ५०० भिक्षुओं के आवास का प्रबंध करवाने की प्रार्थना भिजवा कर, स्वयं उन्होंने सारा दिन गांव में बिताया। सायंकाल माता के घर अपने जन्म-कक्ष में विश्राम करने के लिए पहुँचे। रात वहीं बितायी।

मां मिलने आयी तब उसने देखा कि वहां बहुत से प्रकाशमान अदृश्य प्राणी आये हुये थे। मां ने पूछा, ये कौन थे? उन्होंने बताया, ये चारों दिशाओं के द्वारपाल महाराजा थे, देवराज शक्र थे, ब्रह्मलोक के ब्रह्मा थे। वे सब अर्हंत के अंतिम दर्शन करने आये थे। मां यह सुन कर हर्षविभोर हुई। मेरा पुत्र इतना ऋद्धिशाली और समृद्धिशाली है तो उसका आचार्य तो इससे भी महान होगा। इस पर सारिपुत्त ने भगवान के गुण गाये, जिसे सुनते-सुनते माता का शरीर पुलक-रोमांच से भर गया। शरीर में जागा हुआ पुलक-रोमांच उदय-व्यय के अनित्यबोध में बदल गया। शीघ्र ही अनित्यबोध की वे तरंगें निरुद्ध हुईं। नित्य, शाश्वत, ध्रुव निर्वाण का साक्षात्कार हुआ। वह सोतापन्न हुई। अपरिमित सुखद शांति की अनुभूति हुई। माता ने पुत्र से शिकायत की कि ऐसी सुखद शांति की अनुभूति उसने पहले क्यों नहीं करवायी? पुत्र मुस्करा कर रह गया। धन्य हुई माता! धन्य हुआ पुत्र!

भव-संसरण से मुक्ति

अब पुत्र ने माता को विश्राम के लिए दूसरे कक्ष में भेज दिया। फिर चुन्द थेर से पूछा – क्या समय हो गया? चुन्द थेर ने बताया, सूर्योदय के पूर्व प्रत्यूषकाल है। यह सुन कर धर्मसेनापति ने अपने ५०० भिक्षुओं को बुला कर कक्ष के सामने खुले प्रांगण में बैठाया और उनसे कहा –

"आप सब पैंतालीस वर्षों से मेरे साथ हैं। इतने समय में मैंने शरीर या वाणी से ऐसा कोई कर्म किया हो, जो आपको दुःखद लगा हो, तो मुझे क्षमा करना!"

शिष्यों ने कहा, "भंते, आप महान हैं! इन पैंतालीस वर्षों में हममें से किसी ने भी आपके प्रति कोई पीड़ाप्रद कर्म किया हो तो आप हमें क्षमा करें!"

धर्मसेनापति ने संघ से कहा, "तुम सब पवित्र हो, निर्दोष हो!"

इतना कह कर धर्मसेनापति ने अंतिम सांस छोड़ी और परिनिर्वृत्त हुए।

धन्य महान धर्मसेनापति! धन्य उनका पावन भिक्षुसंघ!!

दाह-संस्कार

पुत्र के आनुभाव को स्मरण कर मां रूपसारी बिलखती रही। उन्हें इस बात का अत्यंत पश्चात्ताप था कि पुत्र के जीवन-काल में उसके गुणों को नहीं जान सकी। रोते हुये उन्होंने पूरा भंडार पुत्र के पवित्र दाहकर्म के लिए खोल दिया। पांच सौ मालाएं और पांच सौ कूटागार बनाने का आदेश दिया। उपासकों ने भी बहुत सी मालाएं और कूटागार बनवाये। अनेक देव और मानव एकत्र थे। पहले देवराज शक्र आये। उनके बाद देव और देवकन्याएं। अपार भीड़! लोगों ने सप्ताहभर उत्सव मनाया।

चंदन की चिता को अनेक प्रकार की गंधों से सजाया गया। स्थविर के शरीर को चिता पर रखकर खस के गट्ठर में लपेटा गया। श्मशान में पूरी रात धर्म-कथा चलती रही। दाह-संस्कार के बाद स्थविर अनुरुद्ध ने सुगंधित जल से चिता को बुझाया। आयुष्मान महाचुन्द ने अवशिष्ट धातु को चुन कर एक वस्त्र में बांधा और बोले – 'अब हमलोग यहां से चलें। बड़े भाई धर्मसेनापति का परिनिर्वाण हो गया। इसकी सूचना सम्यक-संबुद्ध को दें।' ऐसा कह कर स्थविर की अवशिष्ट धातु तथा पात्र-चीवर को लेकर वे सावत्थी आये। अपने उपाध्याय आयुष्मान आनन्द से मिले।

सारिपुत्त के प्रति आनन्द की कृतज्ञता

श्रामणेर चुन्द ने आयुष्मान आनन्द को स्थविर सारिपुत्त के परिनिर्वाण का समाचार बताया तथा उनके पात्र-चीवर को भी साथ ले आया।

श्रामणेर को साथ लेकर आयुष्मान आनन्द भगवान के पास आये और उनका अभिवादन करके एक ओर बैठ गये। तब आयुष्मान आनन्द भगवान से बोले– "भंते! श्रामणेर चुन्द कहता है कि आयुष्मान सारिपुत्त परिनिर्वाण

को प्राप्त हो गये। यह उनका पात्र-चीवर है। भंते! इस समाचार को सुनकर मैं बहुत ही व्याकुल और बेचैन हो रहा हूं। मुझे दिशाएं भी सूझ नहीं रही हैं। धर्म भी समझ में नहीं आ रहा है।"

"आनन्द! क्या सारिपुत्त शीलस्कंध को लेकर परिनिर्वृत्त हुआ है, या फिर समाधिस्कंध को, या प्रज्ञास्कंध को, या विमुक्तिस्कंध को, या विमुक्तिज्ञानदर्शन को लेकर परिनिर्वृत्त हुआ है?"

"नहीं, भंते! आयुष्मान सारिपुत्त न शीलस्कंध को लेकर परिनिर्वृत्त हुए हैं, न समाधिस्कंध को, न प्रज्ञास्कंध को, न विमुक्तिस्कंध को, न विमुक्तिज्ञानदर्शन को लेकर परिनिर्वृत्त हुए हैं, किंतु वे मुझे उपदेश देने वाले, धर्म दिखाने वाले, धर्म बताने वाले, उत्साहित, प्रेरित और प्रहर्षित करने वाले थे। भगवन! सब्रह्मचारियों पर अनुग्रह रखने वाले थे। धर्म-संबंधी उलझनों को दूर करने वाले थे। मैं इस समय आयुष्मान सारिपुत्त द्वारा धर्म में किये गये उपकारों को स्मरण करता हूं। मैं उनके प्रति अति कृतज्ञ हूं।"

"आनन्द! क्या मैंने पहले ही उपदेश नहीं किया है कि सभी प्रियों से वियोग होता ही रहता है। जो कुछ उत्पन्न हुआ है वह विनाश को प्राप्त न हो – ऐसा नहीं हो सकता।

"आनन्द! जैसे किसी सारयुक्त बड़े वृक्ष की सबसे बड़ी डाली हो और वह गिर जाय, वैसे ही इस महान भिक्षु-संघ के रहते हुए भी सबसे बड़े सारयुक्त भिक्षु सारिपुत्त का परिनिर्वाण हो गया। आनन्द! यही सृष्टि का नियम है। जो उत्पन्न हुआ है, वह एक-न-एक दिन अवश्य नष्ट होगा ही। अतः अपने आप को अपना द्वीप बनाओ, आत्मनिर्भर होओ, किसी दूसरे के भरोसे मत रहो। धर्म को अपना द्वीप बनाओ, धर्म की शरण ग्रहण करो, किसी अन्य की नहीं।

"आनन्द! कोई भिक्षु आत्मद्वीप होकर, आत्मशरण होकर, न कि अन्य किसी की शरण ग्रहण कर, धर्मद्वीप होकर, धर्मशरण होकर; न कि अन्य किसी की शरण ग्रहण कर कैसे विहार करता है?

"आनन्द! भिक्षु (साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है;

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है;

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहार करता है;

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, धर्म में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है।

"आनन्द! इस प्रकार भिक्षु आत्मद्वीप होकर, आत्मशरण होकर, न कि अन्य किसी की शरण ग्रहण कर, धर्मद्वीप होकर, धर्मशरण होकर; न कि अन्य किसी की शरण ग्रहण कर विहार करता है।"

"आनन्द! जो कोई भी इस तरह साधना करते हुए आत्मद्वीप होकर, आत्मशरण होकर, न कि किसी अन्य की शरण ग्रहण कर, धर्मद्वीप होकर, धर्मशरण होकर; न कि किसी अन्य की शरण ग्रहण कर विहार करेंगे वे ही शिक्षाकामी भिक्षु (मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्म में) अग्र (श्रेष्ठ) होंगे।"

–*संयुत्तनिकाय* (३.५.३७९), चुन्दसुत्त

बुद्ध को कोई शोक नहीं

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महामोग्गल्लान के परिनिर्वाण-लाभ के कुछ दिन बाद ही वज्जी जनपद में गंगा नदी के तीर पर उक्काचेल में भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ विहार कर रहे थे।

उस समय भगवान भिक्षु-संघ से घिरे हुए एक खुले स्थान में विराजमान थे। तब भगवान ने शांत बैठे भिक्षु-संघ को निहारते हुए यह कहा –

"भिक्षुओ! यह भिक्षुमंडली सूनी-सूनी सी लग रही है। सारिपुत्त और मोग्गल्लान के निर्वाण प्राप्त कर लेने के बाद यह मंडली सूनी-सी हो गयी है। जिस ओर सारिपुत्त और मोग्गल्लान रहते थे उस ओर यह भरा-भरा सा मालूम होता था।

"भिक्षुओ! अतीत काल में जो भी भगवान अर्हत सम्यक-संबुद्ध हुए थे, उनके भी ऐसे ही दो अग्रश्रावक हुआ करते थे। भविष्य में जो भगवान अर्हत सम्यक-संबुद्ध होंगे उनके भी ऐसे ही दो अग्रश्रावक हुआ करेंगे - जैसे मेरे थे सारिपुत्त और मोग्गल्लान।

"भिक्षुओ! श्रावकों के लिए यह आश्चर्यकर है कि आने वाले अग्रश्रावक भी अपने शास्ता के शासनकर एवं आज्ञाकारी और चारों परिषदों के लिए प्रिय, गौरव तथा श्रद्धाभाजन हुआ करेंगे। तथागत के लिए भी आश्चर्यकर है कि ऐसे दोनों अग्रश्रावकों के परिनिर्वाण पा लेने पर भी बुद्ध को न तो कोई दुःख है, न शोक, न संताप। जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है, संस्कृत है, निर्मित है, वह व्यय, विनाश और भंगुर स्वभाव का ही है। वह नष्ट न हो, यह संभव नहीं है।"

देहधातु

सम्राट अशोक के शासनकाल से ही मध्यप्रदेश में स्थित सांची धर्मकाय का प्रमुख केंद्र रहा है। यहां एक सौ फुट व्यास का, पचास फुट ऊंचा विशाल स्तूप उस समय से आज तक विद्यमान है। इसके चारों प्रमुख द्वारों पर जातक कथाओं और बुद्ध के जीवनकाल की घटनाओं की नक्काशी की गई है। इस स्तूप में भगवान बुद्ध के अग्रश्रावकों सारिपुत्त और महामोग्गल्लान की देहधातु स्थापित है।

अतीत कथा

आयुष्मान मोग्गल्लान श्रावक पारमी ज्ञान की पराकाष्ठा पर पहले पहुँचे, आयुष्मान सारिपुत्त उनके बाद। भगवान ने आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महामोग्गल्लान को अग्रश्रावक (प्रधान शिष्य) के स्थान पर प्रतिष्ठापित किया। भगवान के इस निर्णय से कुछ असंतुष्ट भिक्षुओं ने कहा, "शास्ता मुख देखकर भिक्षुओं को पदस्थान देते हैं। यदि संघ में किसी को अग्रश्रावक का पद मिलना चाहिए तो सर्वप्रथम प्रव्रजित पंचवर्गीय भिक्षुओं में से किसी को प्राप्त होना चाहिए। अन्यथा यस (यश) - प्रमुख प्रव्रजित पचपन भिक्षुओं में से किसी एक को, अन्यथा भद्दवर्गीय तीस भिक्षुओं में से किसी एक को यह पद प्राप्त होना चाहिए। अगर इनमें से किसी एक को अग्रश्रावक का उत्तराधिकारी नहीं बनाया तो कस्सप भाइयों को यह पद प्राप्त होना चाहिए। इतने श्रावकों की उपेक्षा करते हुए भगवान ने मुख देखकर आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महामोग्गल्लान को ही अग्रश्रावक के पदों पर प्रतिष्ठापित किया।

धर्मसभा में भिक्षुओं को बातचीत करते देखकर भगवान ने कहा– "भिक्षुओ! क्या बातें हो रही हैं?"

"भंते! अमुक बात।"

ऐसा सुनकर भगवान ने कहा – "भिक्षुओ! मैं मुख देखकर किसी को भी पद नहीं देता बल्कि श्रावकों द्वारा पूर्व में किये गये प्रारब्ध कर्म के फलस्वरूप उनके द्वारा प्रार्थित वस्तु (स्थान) ही उन्हें प्राप्त हुए हैं। अञ्ञाकोण्डञ्ञ ने तत्कालीन बुद्ध को अपने खेत में उपजी फसल में नौ बार दान देकर 'प्रथम धर्मोपदेश में सर्वप्रथम अर्हत होने का वर मांगा था, न कि अग्र-श्रावक का स्थान'। पर, इन दोनों भिक्षुओं (सारिपुत्त और मोग्गल्लान) ने अग्रश्रावक स्थान के लिए संकल्प किया था।"

भिक्षुओं ने भगवान से आयुष्मान सारिपुत्त तथा आयुष्मान महामोग्गल्लान की पूर्व जन्मकथा जानने की उत्सुकता प्रकट की। भिक्षुओं के निवेदन पर भगवान ने इन दो अग्रश्रावकों की पूर्व जन्मकथा बतायी।

आज से असंख्य कल्पों पूर्व सारिपुत्त और मोग्गल्लान अलग-अलग समृद्ध ब्राह्मण कुल में जन्मे थे। दोनों के नाम क्रमशः सरद माणवक और सिरिवड्ढन कुटुम्बिक थे। दोनों घनिष्ठ मित्र थे, एक साथ खेलते-कूदते। पिता की मृत्यु के पश्चात सरद तरुण के मन में वैराग्य जागा। अपनी अपार संपदा श्रमणों, ब्राह्मणों, याचकों, सेवकों को दान करके प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। उन दिनों भगवान अनोमदस्सी सम्यक-संबुद्ध का शासन था। वह धम्म-चारिका पर थे। सरद माणव ने उन्हें पंचांग प्रणाम किया। भगवान अनोमदस्सी तथा उनके श्रावकों के लिए आसनादि की उचित व्यवस्था की। शास्ता के आसन ग्रहण करने के बाद दो अग्रश्रावक निसभ और अनोम तथा शेष शिष्य अपने-अपने लिए निर्धारित आसन पर बैठ गये। सरद ने निसभ और अनोम के संबंध में जिज्ञासा प्रकट की। भगवान ने दोनों के कार्य और महत्त्व पर प्रकाश डाला।

सरद तापस ने संघ-सहित भगवान को एक सप्ताह के लिए अपने यहां भोजन-दान हेतु आमंत्रित किया। बड़े ही श्रद्धाभाव सहित शास्ता और संघ का स्वागत-सत्कार किया। भगवान के लिए पुष्पासन की व्यवस्था की। सातों दिन विभिन्न प्रकार के सुस्वादु भोजन-दान से उनकी सेवा की। सातवें दिन भोजन-वस्त्र आदि दान करके प्रार्थना की- "भंते! सात दिनों तक मैंने आपकी तथा संघ के सेवा-सत्कार से जो कुछ पुण्य अर्जित किया है, उस पुण्य के प्रताप से मुझे शक्रत्व या ब्रह्मत्व प्राप्त करने की कामना नहीं है अपितु भविष्य में मैं भी निसभ स्थविर की भांति किसी बुद्ध का प्रथम अग्रश्रावक होना चाहता हूं।"

शास्ता ने सरद तापस के भूत-भविष्य और उसकी वर्तमान शक्ति-सामर्थ्य का आकलन किया और कहा – "असंख्य कल्पों के पश्चात लोक में गोतम नामक सम्यक-संबुद्ध उत्पन्न होंगे। महामाया एवं सुद्धोदन उनके माता-पिता होंगे। राहुल नामक उनका पुत्र होगा। आनन्द उनके उपस्थाक होंगे। महामोग्गल्लान उनके द्वितीय अग्रश्रावक होंगे। तुम धर्मसेनापति सारिपुत्त नाम से उन सम्यक-संबुद्ध के प्रथम अग्रश्रावक होगे।"

यह बात सरद तापस ने अपने मित्र सिरिवड्ढन को बतायी। उससे द्वितीय स्थान के लिए भगवान से प्रार्थना करने के लिए कहा। सरद के निर्देशानुसार सिरिवड्ढन ने वैसा ही किया। उसके भी संचित पुण्य थे। उसमें भी क्षमता और योग्यता थी। उसके भी भूत-भविष्य का आकलन कर भगवान अनोमदस्सी ने उसके द्वितीय अग्रश्रावक होने की भविष्यवाणी की बात कही।

"भिक्षुओ! प्रत्येक व्यक्ति को जो कुछ उपलब्ध होता है, वह उसके परिश्रम, योग्यता और प्रार्थना के अनुसार ही होता है। तथागत किसी का मुख देखकर किसी को अग्रस्थान नहीं प्रदान करते।"

ऐसा सुनकर भिक्षुओं ने भगवान के कथन का सहर्ष अनुमोदन और अभिनंदन किया।

भारतवर्ष की प्राचीनतम ध्यानविधियों में विपश्यना एक विधि है। इसकी खोज गौतमबुद्ध ने लगभग 2500 वर्ष पूर्व में की थी।

म्यंमा के प्रसिद्ध विपश्यनाचार्य सयाजी ऊ बा खिन ने विपश्यनाचार्य दिवंगत स. ना. गोयन्का को इस विधि को सिखाने के लिये अधिकृत किया।

भारतीय मूल के श्री स. ना. गोयन्का का जन्म म्यंमा के मांडले शहर में हुआ था। वे गृहस्थ थे और वहां के प्रसिद्ध व्यापारी थे। 1947 में उनका परिवार रंगून में बस गया। उन्होंने विपश्यना का प्रथम शिविर सयाजी के साथ 1955 में अन्तर्राष्ट्रीय ध्यान केन्द्र, रंगून में किया था। इस शिविर में गोयन्काजी को ऐसा अनुभव हुआ जिससे उनका जीवन बदल गया ।

1969 में गोयन्काजी भारत लौटे और इस प्राचीन ध्यान विधि को यहां इसके जन्म स्थान में सिखाना प्रारंभ किया और इसका प्रचार-प्रसार पूरे विश्व में किया और विश्व भर में लगभग 230 ध्यान केंद्र स्थापित किये गये। सभी ध्यान केंद्रों का खर्च स्वैच्छिक दान से चलता है और विपश्यना विधि सिखाने का कोई शुल्क नहीं लिया जाता। आज यह विधि दुनिया की सभी महत्त्वपूर्ण भाषाओं में उपलब्ध है और सैकड़ों हजारों लोग हर वर्ष विपश्यना शिविर में जाकर विपश्यना विधि सीखते हैं।

पुस्तक परिचय

बुद्ध के अग्रश्रावकों की शृंखला में विपश्यना विशोधन विन्यास द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक का उद्देश्य पुराने विपश्यी साधकों को गंभीरतापूर्वक विपश्यना ध्यान का अभ्यास करने की तथा नये साधकों को इस पथ पर चलने की प्रेरणा देती है।

सारिपुत्त का जन्म राजगृह के एक धनी ब्राह्मण परिवार [illegible] और उनका पालन-पोषण सुख के साधनों की गोद में हुआ। इन्द्रियजन्य सुखों की क्षणिक[illegible] मुक्त होकर, निर्वेद प्राप्तकर वे और उनके बचपन के साथी महामोग्गल्लान ने निर्वाण की खोज में आध्यात्मिक यात्रा पर निकल पड़े।

इस पुस्तक में धम्म सेनापति सारिपुत्त द्वारा निर्वाण की खोज का वर्णन है, जो प्रज्ञा में अग्र थे और जिन्होंने विपश्यना के प्रचार-प्रसार में असाधारण और अपूर्व योगदान दिया। इसमें भगवान बुद्ध द्वारा सारिपुत्त को दिये उपदेश भी हैं तथा सारिपुत्त और अनेक बड़े बुद्ध के शिष्यों के बीच विपश्यना के सूक्ष्म पहलुओं पर संवाद भी है।

विपश्यी साधकों तथा जो साधक नहीं भी हैं उनके लिए यह एक आदर्श पुस्तक है।

ISBN: 978-81-7414-351-8
VRI - H76